विचक्षण - वचनामृत

(साध्वी श्री विचक्षणश्रीजी के
उपदेश-वाक्यों की प्रेरक चयनिका)

संकलन
श्रीमती भँवरीबाई रामपुरिया

विचक्षण–वचनामृत
संकलन : श्रीमती भँवरीबाई रामपुरिया
संपादन : डॉ. नेमीचन्द जैन

प्रकाशन
विचक्षण प्रकाशन
नईदुनिया परिसर,
बाबू लाभचन्द छजलानी मार्ग,
इन्दौर ४५२ ००९ मध्यप्रदेश

आर्थिक सहयोग
सद्गृहस्थ

प्रथम संस्करण मार्च १९८६

मुद्रण
नईदुनिया प्रिंटरी
बाबू लाभचन्द छजलानी मार्ग
इन्दौर ४५२ ००९ मध्यप्रदेश

मूल्य तीन रुपये

Vichakshan Vachanamrit
Shrimati Bhanwaribai Rampuria

दो शब्द

'विचक्षण-वचनामृत' श्रद्धेय गुरुवर्या विचक्षणश्रीजी महाराज के सहजस्फूर्त उद्बोधना मे चुने गये प्रेरक वाक्यो का एक लोकोपयोगी सकलन है । जिन स्रोतो मे इन्हें आकलित किया गया है, वे है पूज्या प्रधान-पद-विभूषिता श्री अविचल-श्रीजी म सा, स्वनामधन्या श्रीविनीताश्रीजी म सा का सबोधित पत्र, पूज्यवर श्रीजयानन्दजी म सा के साथ हुई बातचीत, 'क्षमा-छत्तीसी' के विवेचन-व्याख्यान के समय रिकॉड की गयी सामग्री, कतिपय प्रवचन, तथा साध्वि-मण्डल मे हुई विविध चर्चाओ मे उद्भूत अमृतवाणी ।

वस्तुत प्रस्तुत चयनिका मे मेरा अपना कहने लायक कुछ भी नही है, मैंने तो मात्र सुलभ तथा रिकॉड की गयी सामग्री मे चुन कर इन उद्धरणो का एक अकिंचन उपहार के रूप मे अर्पित किया है। इसमे जो भी है वह सब उन ममता-मूर्ति/आत्मानुभवलीन गुरुवर्याश्रीजी की सहज नि सृत अमृतवाणी ही है ।

प्रस्तुत सकलन की प्रेरणा साध्वीश्री मणिप्रभाश्रीजी से समय-समय पर मिलती रही है, फलत यह जनोपयोगी कृति आपके सम्मुख है। इन शब्दो के अलावा और क्या लिखू? बस, इतना ही कि जिन-जिन की कृपा प्रसाद मुझे पाथेयरूप मिली है उन सबकी मैं हृदय से कृतज्ञ हू इस विश्वास के साथ कि प्रस्तुत चयनिका के हर शब्द की पृष्ठभूमि पर आप उस महान् विभूति को जीवन्त पायेंगे, जिसने जैनधर्म और दर्शन को प्रदर्शन का विषय नही बनाया वरन उन्हें अक्षरश परिपूर्ण पराक्रम के साथ जी कर सिद्ध किया ।

—भँवरीबाई रामपुरिया

परम श्रद्धेया
साध्वीश्री विचक्षणश्रीजी महाराज
के जयपुर मे फाल्गुन शुक्ल
तृतीया विक्रम संवत् ,२०४२
तदनुसार १३ मार्च १९८६ को
आयोजित
मूर्ति-स्थापना-समारोह के
मगलमय प्रसंग पर
उनके प्रति
श्रद्धाञ्जलि-रूप
संकलित एव प्रकाशित

क्रम



भक्ति



आत्म-चिन्तन

सिद्ध-क्षेत्रों की पुनीत छाया में खब आत्मोन्नति करना। हर समय -आत्मचिन्तन में लगे रहना। यथासम्भव समय का सदुपयोग करना। सिद्ध क्षेत्र में निवास बड़े पुण्ययोग से मिला है। तीर्थधामों की यात्रा भी पुण्य से ही मिलती है।

भक्ति योग निरापद

वर्तमान में ज्ञानयोग, ध्यानयोग, तपयोग, हठयोग आदि साधनाओं में भक्तियोग ही एक ऐसा योग है जो निरापद और निर्विघ्न है, जिसमें कहीं कोई खतरा नहीं है, कोई रुकावट नहीं है।

भगवान भक्त

भगवान् भक्त के अधीन है– इसका यह अर्थ नहीं है कि भक्त जैसा नचाये भगवान वैसा ही नाचते हैं, बल्कि भगवान् की असीम करुणा के प्रति हृदय में दृढ विश्वास, सम्मान और आदर भाव रखने वाले भक्त का द्रव्य-भाव कल्याण हुए बिना रहता नहीं है, बस यही अधीनता है।

प्रभुमय बनें

समझ लो यह हमारी आयुष्य का अन्तिम दिन है। क्या मालूम रात्रि मे सोने के पश्चात् प्रात. उठें भी, न भी उठे ? ऐसा मानकर, जानकर, समझकर तीव्र-वेगी गति से चलना है। प्रभुमय बनना है।

द्वन्द्वों के पार

यो तो प्रत्येक व्यक्ति कमोवेश भगवान् की भक्ति करता ही है, पर सभी प्रार्थनाओं में वह पल धन्य होता है, जो साधक को समस्त द्वन्द्वों से मुक्त कर स्वय को धन्य बना देता है।

आत्मभाव से परमात्म भाव

वीतराग भगवतो का, पुरुषोत्तमो का वन्दन-पूजन-अर्चन-सेवा-भक्ति-गुणगान तथा उनके द्वारा निरूपित सिद्धान्तानुसार आचरण को सत्संग कहते है। ऐसे सत्संग से हम उत्तरोत्तर नीचा दर्जा हटाते हुए ऊँचे-से-ऊँचे दर्जेपर पहुँचते जाते है। यह आत्मा की व्यवहार सेवा है। निश्चय से इस तरह अज्ञान हटाते-हटाते हम आत्मभाव मे पहुँचकर परमात्म-भाव को प्राप्त कर लेते है।

स्वय ही बनेंगे

पहुँचाने वाला, बनाने वाला कोई दूसरा नहीं है। हम ही पहुँचने वाले है, हम ही बनने वाले है, हमे बनाने-बिगाडने वाला कोई और नही है। हम स्वय ही बनेंगे।बनने मे यदि मात्र निमित्त या कारण कोई है, तो एक मात्र वीतराग प्रभु हैं। उनकी वाणी है, उनका धर्म है। वीतराग प्रभु की उपासना, सेवा, गुणगान, नाम-स्मरण, भक्ति, जाप इत्यादि सब परमात्म पद-प्राप्ति के साधन हैं।

राग जहर कब ?

राग जहर कब बनता है ? तब जब सीमा में बँधकर वह सडने लगता है। जल जीवन-दाता है पर वही जल जब तक बहता रहता है, तब तक अमृत है और रुक गया तो भयकर विनाश लीला करने वाला बन जाता है। देखा मोरवी मे इस जीवनदाता जल ने क्या किया ? राग को फैलाते जाओ, विस्तृत करते जाओ, बाँटते जाओ, वह कभी भी जहर नहीं होगा। विश्व प्रेम, प्राणिमात्र पर प्यार,कृपा,करुणा, यही महावीर का अमृत सन्देश है।

शक्ति का प्रपात

भगवान् की सेवा करते-करते, भक्ति करते-करते, आज्ञा-पालन करते-करते अन्दर से एक शक्ति प्रकट होती है, आत्मा में बल आता है, ताकत आती है। वही शक्ति आपको /हमें सहन करने का बल देती है, वर्ना हमारी क्या ताकत जो इस व्याधि को सहन कर सकें ?

भक्ति और अहंकार : ३६

आत्म समर्पण-रूप भक्ति से अहंकार गल जाता है। सर्व पापों का मूल अहंकार है। भक्ति और अहंकार में कोई मेल नहीं है, दोनों सर्वथा विपरीत है। जहाँ भक्ति होगी, अहंकार नहीं होगा; जहाँ अहंकार होगा, भक्ति नदारद होगी। महापुरुषों की करुणा, उनका विश्व-प्रेम, उनके आत्मीय भाव के प्रति समर्पण ही भक्ति है।

क्षमा आ जाए तो

वीतराग-मार्ग पर चलने के लिए पहला मन्त्र है क्षमा। क्षमा मोक्ष का द्वार है। क्षमा आ जाए तो शेष नौ धर्म आपो-आप चले आयेंगे। क्षमा से ही सत्य, शौच, आकिंचन्य आदि धर्म आते है, शोभा पाते है; वर्ना बाहर की शुद्धि भले ही कितनी कर ले; कुछ भी होना जाना नहीं है।

परम उपलब्धि

उस स्वरूप के साथ हमारे स्वरूप का मिलान होना चाहिये। जितने-जितने अशो मे अभेदता बनेगी, उतने-उतने अशों मे भेद मिटता जाएगा, फिर उतनी-उतनी वीतराग दशा भी मिलती जाएगी।

राग-भाव जब तक नहीं छूटता, तब तक भव-बन्धन नहीं टूटेगा।

यही शुरुआत है

परम ब्रह्मस्वरूप जब तक समझ मे आया नहीं, लक्ष्य में नहीं आता। शब्दों मे उसके आने से काम नहीं चलता। शब्दों से हमने समझ लिया कि वह अरूपी है, अविनाशी है, अचिन्त्य है, किन्तु मात्र शब्दों मे नहीं, दृष्टि मे भी एक प्रकार की जागृति आ जानी चाहिये। यही शुरुआत है, अन्तर्दृष्टि की, परमात्म दृष्टि की। हर आत्मा अपने मे सोचे-समझे कि मैं स्वयं परमात्मा हूँ।

स्वयं भगवान्

इतर धर्मों में भक्त माँगता है, भगवान् देता है, जबकि जैनधर्म का भक्त माँगता है, किन्तु वह अपने-आप मे ही भगवान् को प्रगट कर उसकी प्राप्ति का आनन्द पाता है।

पारस से पारस

हालांकि जैनधर्म के सिद्धान्तानुसार जैनों का भगवान् वीतराग है, जो न भक्त को भक्ति से मिलता है, न जो किसी की अभक्ति से खीजता है। वह तो राग-द्वेष-जन्य द्वन्द्व भावों से मुक्त परम वीतराग देव है। उसे चाहे पूजो, चाहे गाली दो, कोई फर्क नहीं पड़ता, किन्तु जैनधर्म में भक्ति का प्रतिदान भक्तों को बड़े निराले ढंग का मिलता है। जैसे पारस तो लोहे का सोना ही बनाता है; किन्तु भगवान् तो भक्त को भगवान् बनाता है, यानी पारस से लोहा सोना न बनकर स्वयं पारस बन जाता है। यह जैनधर्म की भक्ति का अनूठा चमत्कार है।

स्व-रूप चिन्तन

वीतराग भगवत को पकड़कर ही हम वीतराग बन सकेंगे। चितेरा (चित्रकार) चित्र तैयार करता है। कैसे करता है? चित्र को लेकर, सामने रखकर बराबर निरीक्षण करके ही वह उसे बनाता है। हम भी वीतराग में रही हुई शक्तियों का, वीतराग कैसे बने इस मार्ग का, वीत-रागत्व के विकास का, वीतराग अवस्था के स्वरूप के चिन्तन का, वीतराग मुद्रा का तथा वीतराग की वाणी का आलम्बन लेकर वीतराग बनेंगे। जिन भावों का चिन्तन वीतराग ने "वीतराग" बनने के लिये किया, उन्हीं भावों का चिन्तन, मनन हम भी करेंगे।

जैसी रही भावना जाकी

निमित्त सब के लिए समान काम करता है, किन्तु फल की प्राप्ति अपने-अपने भावों के अनुसार होती है। भगवान् अथवा सद्गुरु सब के लिए समान निमित्त है, हजार व्यक्ति वन्दन-नमन करने को आते हैं, उनमें फल की उपलब्धि सब को अपने-अपने भाव के अनुसार ही मिलती है, क्योंकि भाव सबके स्वाधीन है।

चौथा कैसे मिलेगा ?

हम तीन निक्षेपों के बिना भाव निक्षेप मे नही जा सकेंगे । नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव । इनमें से यदि प्रभु का नाम-स्मरण न करें, प्रभु को देखें नही, दर्शन करें नही, प्रभु के गुणों का चिन्तन करे नही तो इन तीनों निक्षेपों के बिना चौथा भाव-निक्षेप कैसे मिलेगा ?

मै हूँ वह स्वयं

जिस परमात्मा का ध्यान जगत् करता है, कौन है वह ? वह मै स्वय हूँ; फर्क केवल इतना है कि उन्होंने परमात्म तत्त्व को प्रगट कर लिया है और मेरा आवरित है । कर्मो के मेल की परतें थर-के-थर जमी है, परमात्म शक्ति उनके पीछे दबी है, छिपी है । कर्म मैने ही पैदा किये है । मै ही उन्हे हटा सकता हूँ । कर्म के पर्दे हट जाएँ, फट जाएँ, तो मै स्वयं परमात्मा ही तो हूँ ।

जयवन्त रहे जिन-शासन

देवों से वदनीय, पूजनीय यह मुनिवेश है। हम अपनी तुच्छ प्रवृत्तियों से, तुच्छ निमित्तों से, क्षुद्र वृत्तियों से इसकी शान जरा भी मलिन न करे, न होने दे। भले ही सहना पडे तो सह लें, किन्तु इस शासन की सदा जय हो। प्राण देना पडे तो दे दें। जयवन्त रहे जिन-शासन, वह शासन जिसने अनन्तों को पार किया, कर रहा है, करेगा, पर जो अखण्ड है, शाश्वत है, अनादि है।

उसे शुभ कहूँ, या अशुभ ?

जिसकी शक्तियो का कही भी उपयोग नहीं हुआ, जिसने जिन-शासन का जय-जयकार कभी नही किया, जिसने जिन-शासन की प्राप्ति के साधन नही जुटाये, नही लुटाये, उसका धन किसी जीव के काम नही आया, न भूखो को भोजन, नंगो को वस्त्र, बीमारो को दवा, वृद्धो को सहारा, अभाव-ग्रस्तो की पूर्ति मे काम आया, केवल अशुभकर्म के वन्ध का कारण ही बना; खूब खाये मेवे, खूब उड़ायी मिठाइयाँ, विषय-वासना की पोपक साम-ग्रियों के संग्रह मे ही जिसके धन का उपयोग हुआ, बोलो उसे शुभ कहूँ या अशुभ ? अशुभ ही है। जो दुर्गति मे ले जाए वह अशुभ है। जो धार्मिक प्रवृत्तियाँ शुभ लाने का निमित्त देती हैं वे शुभ है।

त्रिवेणी-सगम

वीतराग वन गये वे हमारे देव । वीतराग वनने के लिए जो सचेष्ट है, जिनका पुरुपार्थ अहोरात्र वीतरागता प्राप्त करने मे तथा राग-द्वेप-रूपी रेशम की उलझी गाँठ को खोलने मे ही लगा है वे हमारे गुरु है । वीतराग-कथित, आचरित जो मार्ग है, वीतराग वनने की जो विधि है, पथ है, वह हमारा धर्म है । इन तीनो का मिलन ही जिन-शासन है, जिन-साधना है । इन तीनों को प्राप्त करके हम एक दिन उस स्थिति को प्राप्त कर लेगे, जिसे वीतरागता कहते है, जिसे आत्म-शान्ति कहते है ।

इसी में शान है

हम कोई कायरों की सतान नहीं है । हम भगवान् महावीर की सतान है । सयम-पालन मे वीर, तप-जप करने मे वीर, कर्म-शत्रुओं को हराने मे वीर, आधि-व्याधि सहने मे वीर । हमारी आवाज मे दिलगीरी क्यों ? आँखो में पानी क्यों ? चेहरे पर उदासी क्यो ? वीर की सतान वीर वनकर जीएँ, वीर वनकर रहे, वीरता के साथ ही मरें, इसी मे शान है, गौरव है, शोभा है ।

वह पल / वह समय

अपने अस्तित्व को मिटाकर भक्त का भगवान् के प्रति समर्पण का भाव भक्ति है। सब कुछ अपने आराध्य के चरणो मे समर्पित कर दो; अपनी इच्छा, अपनी अभिलाषा कुछ भी शेष न रखो; बस ! वे कहे वैसा करो, वे बतायें वैसे रहो, फिर कल्याण कहाँ दूर है ? जिस पल भक्त अपने आराध्य के चरणो मे सर्वभाव से समर्पित होकर उनमें ही लीन हो जाता है वह पल , वह समय साधक का धन्य होता है। वह उसके जीवन की परम शुभ घडी होती है। हजारो वर्षों की साधना से जो काम सिद्ध नही होता, वह चुटकी वजाते सिद्ध हो जाता है।

पूर्ण पुरुष की भक्ति

दीपक से अन्धकार का नाश स्वाभाविक है। उसका अपना स्वभाव है – अन्धकार को मिटाना; किन्तु यहाँ तो भक्त स्वयं दीपक वन जाता है। अन्धकार को भगाने वाले प्रदीप "भगवान् के स्वरूप की उपलब्धि" ही भक्त का लक्ष्य है।

अपनी पूर्णता के प्रगतिकरण के लिए, पूर्ण पुरुष की भक्ति जैनधर्म को स्वीकार है, मान्य है।

कौन दिखाता राह ?

सही मे यदि वीतराग निग्रन्थमार्ग न होता, तो हमारी क्या दशा होती ! हम रक-भिखारी-जैसे पुद्गल सुखों की भीख माँगते, भटकते और ये सुख हमे केवल मृगतृष्णावत् नचाते रहते । जन्मते रहते, मरते रहते और आशा-तृष्णा के चक्कों मे पिसते रहते, पिसते रहते । कौन पूछता ? कौन सँभालता ? कौन राह दिखाता ? वीतराग वाणी का, वीतराग मार्ग का अनन्त उपकार है । अनन्त उपकार उन गुरुजनो का, जिन्होंने यह उत्तम मार्ग पकड़ाया, उन्हे बार-बार वन्दन है, नमस्कार है ।

बीमारी में स्वास्थ्य

बीमारी में सोते-सोते भी भगवान् का/अरिहन्त का नाम जपो । कोई आयेगा, तो हमारे दस मिनिट खराब करेगा व्यर्थ लेगा, अत जाप मे मन लगाने मे कौन आया, कौन नहीं आया, किसने पूछा, किसने नहीं पूछा, किसने सेवा की, किसने नहीं की इत्यादि सारे विकल्प समाप्त हो जाएँगे । उलटा यदि कोई आयेगा तो ऐसा लगेगा- 'न आता, तो अच्छा था । आने से हमारा समय व्यर्थ लूट ले गया ।'

तो फिर कुछ नहीं है

महावीर स्वामी के पीछे ब्राह्मण फिरता-फिरता माँगता रहा, "भगवन्, आपने इतना धन वरसाया, मैं निर्भागी उस समय वाहर था। वंचित रहा। अब कुछ दे दो।" आखिर नतीजा क्या आया? भगवान् को करुणा भाव आया तो वस्त्र ही आधा फाड़कर ब्राह्मण को पकड़ा दिया। भाग्यवान जीवो मे करुणाभाव होगा ही यदि उनमे वह नही है, तो फिर कुछ नही है। सब व्यर्थ है।

फिर भी प्रमाद !

कबूतर बैठा गुन-गुन, गुटरगूं पूरे दिन करता है। करे भी आखिर क्या ? न घर का काम, न वाहर का काम, न गाँव का काम, न देश का काम, न राष्ट्र का काम, न पढने-लिखने की शक्ति, न चिन्तन-मनन की बात, आखिर करे क्या ? ज्यादा-से-ज्यादा दो कबूतर मिलकर चोंच मे चोंच डालते है, या क्रीडा कर लेते है। इसी प्रकार असख्य जन है, जिनके न परिवार है, न सन्तान है, न भोजन की पचायत है, करे क्या ? घमे-फिरें, क्रीडा करे। हमारे पास चिन्तन है, मनन हे, ज्ञान-धारा हे, जीवनोपयोगी साधन जुटाने की चिन्ता नहीं याने जीवन कितना शान्त, कितना सनिय ? फिर भी प्रमाद। ज्ञानी भगवन्तों ने हमें उद्बोधन दिया—चेटा ! ये दिखने वाले सुख थोडे-से है। दुःख लम्बा-चौडा हे, अत इससे मन को विराम दो। परमात्मा की करुणा असीम है।

धब्बा नहीं लायेंगे

जिस जिन-शासन से हमने इतना पाया। उस जिन-शासन की शान रखने के लिए, गुरुजनो का मान रखने के लिए, कटिबद्ध रहें। ध्यान रखें कि हमारे निमित्त से, हमारे आचार-विचार से, हमारे व्यवहार से, कार्य से शासन की निन्दा न हो। यदि हम शान बढा न पाये, तो कोई बात नहीं, परन्तु घटाने में, निन्दा कराने में हमारा योग न हो। इतना निर्णय हमारा पक्का हो कि कष्ट सहना पड़े तो सहेंगे, भूखे रहना पड़े तो रहेंगे, पर सन्मार्ग की, मुनि-मार्ग की, जिन-शासन की, मुनि-वेश की शान पर जरा भी धब्बा नही आये। श्रावक शब्द की गरिमा हम नही गँवायेंगे। ऐसा कोई काम हम नही करेंगे, जिससे कोई कहे–"देखो ये जैन है !" कम-से-कम इतनी प्रतिज्ञा तो आज आप-हम सभी करके उठें।

काम वन जाएगा

परिणमन नहीं होता, फिर भी बाँचते जाओ, पढते जाओ । जितनी देर बाँचोगे, पढोगे, कम-से-कम उतनी देर तो वृत्ति पढने में रहेगी । उतने समय तो कम-से-कम अशुभ से वचोगे । परिणमन अपने हाथ मे नही ह, यह तो अपने हाथ मे ही है, दूसरा तो करने वाला है नहीं, पर अभी पुरुषार्थ मे वेग आया नहीं, पुरुषार्थ की दिशा वदली नहीं । बाँचने मे पुरुषार्थ की गति कभी तो वदलेगी, जानकारी तो होगी, पुरुषार्थ तो जागृत होगा । माला मे मन भटकता है, वाचन में नहीं भटकता है । अर्थ-चिन्तन चलता है, पुण्य-बंध होता है, आगे जाकर फिर कही अच्छा योग और मिलेगा । पुरुषार्थ जागृत होगा । काम वन जाएगा ।

भले मानस !!

यदि आपके माता-पिता आपको एक सामायिक से खुश होते हो तो इसमें आपका नुकसान क्या है ? माता-पिता की प्रसन्नता, माता-पिता का आशीर्वाद क्या एक सामायिक के मोल में भारी पड़ता है ? कैसे है आप एक सामायिक करके माता-पिता की आँत को ठंडा नही कर पाते, इसमे भी हिचकिचाते है सारे दिन ?

यदि माता-पिता की सन्तुष्टि के लिए एक इतना-सा काम कर लिया तो कौन-सा घाटा आ गया ? भले मानस इसके लिए अपने मन को मना लो, कुछ भी जाने वाला नही है बल्कि माता-पिता की प्रसन्नता, उनके आशीर्वाद आपके जीवन के आनन्द को निखारने वाले ही सिद्ध होगे ।

माता-पिता, सास-ससुर की सन्तुष्टि के लिए एक सामायिक कर ली, मन्दिर हो आये तो भले आदमी इसमे नुकसान क्या हो गया ? दिन-भर घण्टो गप ही तो मारते हो, मिलने भी तो जाते हो, पूरा दिन सेज पर थोड़े ही पड़े रहते हो ?

अलग पहचान

जैन शासन तथा जगत् का कोई मेल नहीं है। जैन, जगत् मे रह कर भी जगत् से अलग अपनी पहचान रखता है, जैसे मक्खन छाछ मे होने पर भी अपना अलग परिचय देता है। जैन सघ का आचार-विचार इतना उच्च होना चाहिये कि जिसे देख कर हर व्यक्ति उसकी ओर खिचा चला आये।

जैन याने मृत्यु जयी

जैन के सामने मरण का भय रहता नहीं। जीवन का गलत मोह भी उसे नहीं होता। मरण मे वचने के लिए गलत उपाय करे वह जैन नहीं है। शरीर-रक्षा के लिए भक्ष्य-अभक्ष्य का विवेक भी जो भूले, वह भी जैन नहीं है, वस्तुत जैन हर समय मरने की तैयारी रखता है। जैन के प्रत्येक कार्य मे जैनाचार की छाप होनी ही चाहिये।

एक था वक्त ऐसा भी

एक समय ऐसा भी समाज था माँडवगढ़ में कि कोई व्यक्ति आता और यदि वह गरीब ही होता तो समाज के लोग उसकी मदद करते थे। मॉडव-गढ के संघ का नियम था कि ऐसे आगन्तुको को प्रत्येक घर से एक ईंट मकान बनाने को, सोने की एक मोहर व्यापार के लिए दी जाती थी। इस नियम का पालन सभी करते थे। आगन्तुक आते ही घरवाला और श्रीमन्त बन जाता था। व्यापार भी करने लगता था, और उसका घर भी बस जाता था।

उन्हे अपनी जाति पर, अपने धर्म पर, अपने भाई-बन्धु पर राग था। यह मेरी जाति का है, यह मेरे धर्म का है, यह सेठो की जाति का व्यक्ति है, इसे सेठ होना चाहिये। ऐसा गौरव था, उन व्यक्तियो में गरिमा थी; उदारता थी, देने की भावना थी। मन में अपने भाई को अपने पाँवो पर खड़ा करने की ललक थी।

हम शाह और हमारे भाई-बन्धु गरीब, इसमे उन्हें अपने गौरव मे लांछन दीखता था। शर्म आती थी। आपको आती है आज ?

आज भी मद्रास में पालनपुर वाले किसी भी पालनपुर वाले के आने पर अपने समाज की मीटिंग मे डायरी मे उसका नाम नोट करेगे, उसके साथ व्यापार-व्यवहार करेगे, उनके घर क्या होता हे, इसकी जानकारी उनके पास मिलेगी, पर क्या आपके पास है स्वधर्मी का वह प्रेम ?

'माल' सब, 'मार' सिर्फ त

परिग्रह सज्ञा की असीम मूर्च्छा मे केवल पाप कमाया, पर सोचा नहीं कि एक कौडी भी साथ जाने वाली नही है, इसकी गुलामी भी पापबंध का कारण है । झूठ बुलाये तो यही, चोरी करावे तो यही, विश्वासघात करावे तो यही, लडाई करावे तो यही, परस्पर द्वेषभाव फूट-फजीती तो यही, भव-भ्रमण का कारण भी यही, क्योकि हमने कभी बैठकर सोचा ही नहीं, अपनी अज्ञान दशा की ओर झांका ही नहीं कि हे जीव तू किसके लिए इतने पापों का सग्रह करता है ? "माल" सब खायेंगे, "मार" कवल तू अकेला खायेगा ।

सामायिक मे बैठकर चिन्तन करे, मनन करे, एकाग्रभाव पूर्ण भजन बोले, जिससे मन मे वैराग्य आवे ।

सद्गुरु

वीतराग की वाणी सुनाते है। वीतराग वाणी के अनुसार जिनका आचरण है; वे महाभाग हमारे सद्गुरु है।

आज्ञा-पालन तो करें

आज्ञा-पालन ही दर्शन है। आज्ञा का पालन तो करे नही और रोज दर्शन करें, सेवा-भक्ति करें। यह दर्शन दर्शन नही, सेवा सेवा नही।

अमृत : पी; अमृत : पिला

महावीर के अमृत सरोवर में-से ज्ञान का अमृत खूब पीता जा, पिलाता जा; मस्त बनता जा, मस्त बनाता जा।

मै आत्मा हूँ

तीर्थंकरों की देशना आत्मस्वभाव समझाती है। संवेग, निर्वेद, वैराग्य पैदा करती है। "मै आत्मा हूँ" ऐसा दृढ विश्वास, अखण्ड लक्ष्य पैदा करती है। ऐसी देशना सुनकर अनेक भव्य जीव इस संसार-सागर से तिर गये है।

सही दृष्टि

हे प्रभो, आपकी दया से आत्मदृष्टि मिले। जड-चेतन को समझने की, परखने की योग्यता मिले। सत्य नजर मिले, वीतराग स्वभाव की दृष्टि मिले। यही दृष्टि मोक्षमार्ग की सृष्टि रचाने वाली भाग्यवान दृष्टि होगी।

समाधि का स्वाद

समाधि के स्वाद का आस्वादन वही साधक कर सकता है, जो प्रभु के चरणों में तन-मन-धन अर्पित कर स्वय भी मौन भाव से समर्पित हो जाता है। सुख-दुख से परे जिसका मानस हो जाता है, वह है सच्चा साधक।

हँसते-हँसते झेलो

प्रभु-नाम का स्मरण करते रहो। हर समय अरिहत का नाम-स्मरण चालू रखो। जो क्षण जाता है, पुन लौट कर नहीं आता। विकल्पों को कम करो, सहनशीलता बढाओ। कष्ट, सकट, रोग, बीमारी सब हँसते-हँसते झेलना सीखना है।

बुराई मत करो

आने वाले को उपदेश दो। अच्छी वात कहो। व्यर्थ की वाते, निन्दा, वुराई मत करो। यदि सामने वाला करे तो मौन बैठे-बैठे भगवान् के नाम की जाप करो।

हर समय 'वीर-वीर'

आत्म-चिन्तन करो। अध्यात्म का वाचन करो। हर समय "वीर-वीर" रटन करो।

भक्ति जगे, अहंकार भगे

संतो की कृपा-करुणा विश्व पर निरन्तर वरस रही है; वही सव जीवो के उत्थान मे लगी है, वही सहायक वन रही है। ऐसी मान्यता के विना भक्ति जागृत नही होती। भक्ति जागृत हुए विना अहंकार नही मिटता, नष्ट नही होता।

पुण्य-संचय

उत्साह-भावो की खूव वृद्धि-पूर्वक शुभ काम करने से पुण्य सचय होता है। पुण्य के कार्य भी पुण्य-वानो के ही उदय में आते है। यो संसार के काम तो सभी करते है।

लक्ष्य



संसार

बनना-बिगड़ना संसार का स्वभाव है।

समत्व-में-प्रवेश

कषाय-भावों को जीतकर समभाव लाना है।

जहर भी, अमृत भी

यदि संसार अनादि है, तो मोक्ष भी अनादि है। कर्म अनादि है, तो कर्म-क्षय करने का उपाय भी अनादि है। जहर है, तो अमृत भी है, दुर्जन है, तो सज्जन भी है। सब अनादि-अनन्त है। पक्ष-विपक्ष सब सदा से साथ चले हैं।

आया ध्यान में

हम भी अपने मुँह मियां-मिठ्ठू तो बन ही जाएँ कि मोक्ष जाने वाले भी हमारी जात-पांत के ही हैं। सभी मोक्ष के अधिक निकट हैं। आया ध्यान में। हमारे अलावा कोई भी प्राणी मोक्ष जाने में समर्थ नहीं है। मनुष्य ही मोक्ष की ज्यादा निकटता में है।

प्रतीक्षा किसकी

नरकगामी जीव भी यहीं हैं, तिर्यंचगामी भी यही है, देव मनुष्यगामी भी यहीं हैं, और मोक्ष-गामी भी हम में-से निकलेंगे। बाहर से कोई थोड़े ही आने वाला है।

निश्चय व्यवहार

निश्चय मे बढना है, व्यवहार में रहना है।

असल नाम

प्रेमचन्द, नेमचन्द, खेमचन्द ये सब नाम है शरीर के। इन्हें न धरो तो काम चले नही; पर असल में अपना नाम तो है आत्माराम, चेतन-राम।

बन, स्वय का गुरु स्वय

अपना गुरु स्वय आप बनेगा, तभी काम सरेगा। अरे, गुरुजी तो एक बार समझायेंगे, दो बार, दस बार समझायेंगे, आखिर तो अपनी स्वय की समझदारी ही काम आयेगी। जब तक स्वय की समझ जागृत नहीं होगी, तब तक कुछ भी काम बनने वाला नहीं है। तू स्वय स्वय का गुरु बनेगा, तभी काम बनेगा।

लक्ष्य को सामने रखें

"यह विनाशी है, हम अविनाशी हैं" ऐसा हम बार-बार सोचें, समझे, चिन्तन करें। तत्काल तो हम अविनाशी अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकेंगे, किन्तु लक्ष्य तो सामने रखें कि मुझे इस मंजिल तक जाना है। यह लक्ष्य निश्चित करें कि मुझे ऐसा बनना है। निर्लक्ष्य भटकने से कम-से-कम लक्ष्य की ओर गतिशील बनने का प्रयास जरूरी है।

उल्लू और सूरज

उल्लू के बच्चे से कहे कि सूर्य के तेज का वर्णन करो तो वह बेचारा क्या कहेगा ? जिसने नजर-भर कभी सूर्य को देखा ही नहीं है, वह उसका वर्णन क्या करेगा ?

क्या बनना है हमें ?

सृष्टि मे शक्कर की मक्खी बन कर रहो; मीठा भी खाले और खाकर उड़ भी जाए। शहद की मक्खी कभी मत बनो कि मीठा खाने के लालच में प्राण तक गँवाने की नौबत आ जाए। हमे क्या बनना है ? शक्कर की मक्खी।

यदि

यदि सृष्टि को समझकर दृष्टि नही बदली तो ज्ञान किसी काम का नहीं है।

कषाय ही संसार

"आचारांग" मे ऐसा आया है कि संसार की जड़ कर्म है, कर्म की जड़ कषाय है, और कषाय की जड़ संयोग है, अतः कषायभाव ही संसार है।

मूल में भूल

हम कहाँ भूल रहे हैं? महावीर के बेटे तो हम हैं पर उनके मूल मार्ग को भूल रहे हैं। महावीर-मार्ग का मूल है आत्मज्ञान। "मैं कौन हूँ" यह समझने की दृष्टि ही महावीर का मार्ग है।

भेद-विज्ञान

सौ वर्ष की उम्र वाला भी परम अज्ञानी है, यदि वह जड़-चेतन के भेद को नहीं समझता है, तो बालजीव है।

उपदेश नहीं, आचरण

'सर्वत्र मैं हूँ। सब मेरे समान हैं। सब संवेदनशील जीवात्माएँ हैं। सभी को दुःख, मरण आदि अप्रिय हैं।'—ऐसी भावना धारणा किये बिना अहिंसा की सिद्धि त्रिकाल में भी सम्भव नहीं है। अहिंसा के आचरण के बिना अहिंसा का उपदेश शून्य ज्ञान है।

एक मात्र ध्येय

आत्म-साधना के योग्य भूमिका बनाकर आत्म-साधना में लग जाना ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य होना चाहिये। इस बीच यदि किसी का भला बन पड़े, या भला हो जाए तो ऐसा ध्यान अवश्य रखना चाहिये, पर अपने जीवन का एकमात्र ध्येय आत्म-कल्याण ही होना चाहिये।

घर का दिवाला/पर की दिवाली

स्वयं उजाले में रहकर दूसरो को उजाला दो। ऐसा कभी मत करना कि घर का दिवाला निकाल-कर दूसरो को उजाला दो।

अपनी करनी, अपनी भरनी

गुरुजी रह गये संसार मे और ५०० चेले चले गये मोक्ष। यहाँ गुरु-चेले की कोई ठेकेदारी नहीं; "मै तो गुरुजी हूँ, मेरा क्या बिगड़ सकता है" ऐसी ठेकेदारी जैनधर्म को मान्य नही। यहाँ गुरुजी हो, चाहे चेलाजी, सबको अपनी-अपनी करनी का फल मिलेगा, जो उन्हे भोगना ही पड़ेगा। यहाँ तो सारा हिसाव-किताव थर्मामीटर है, भाव-विशुद्धि पर। यदि भाव शुद्ध हैं, तो सबका कल्याण है और यदि भाव शुद्ध नही हैं तो गुरुजी भी बैठे रह जाएँगे, और चेलेजी मुक्त हो जाएँगे। यहाँ पद का कोई महत्त्व नही है, महत्त्व है भाव-विशुद्धि का।

वह भाग्यशाली है

निर्ग्रन्थ मार्ग के बिना, सयम मार्ग के बिना, अपरिग्रह अवस्था के बिना, वीतराग भावो के बिना कभी कोई सुखी नही हुआ, होगा नही, होता नही। यह सुख-प्राप्ति का अनादिकालीन रास्ता है। यह रास्ता जिसे भी मिला है, जिसने भी इसे पकडा है, वह भाग्यशाली है। मिले हुए रास्ते को जो सफल कर रहा है, सार्थक कर रहा है, उसे पकडकर सही दिशा मे कदम उठा रहा है, वह महान् भाग्यशाली है। जो मिले हुए मार्ग को मलिन करता है, उस जैसा अभागा कोई नहीं है।

'मै आत्मा हूँ'

मान-अपमान के भावों पर विजय, इच्छाओं का निरोध, हर समय प्रभु के नाम-स्मरण का अभ्यास बढाना है। "मैं आत्मा हूँ"—इसे प्रतिपल याद रखना है। यही अभ्यास बढाना है। इसी पर विचार करना है।

समझो, रटो नहीं

"जड़ ने चैतन्य बन्ने, द्रव्य नो स्वभाव भिन्न" श्रीमद् राजचन्द्र के इस वाक्य को केवल बोलते ही न चले जाओ। बोलते-बोलते तो वर्षों बीत गये। अब इसे समझो। इसका प्रयोग करो। जड़ कौन और चैतन्य चिदानन्द कौन? अब मात्र रटने से काम नहीं बनने वाला है। जड़ और चैतन्य दोनों को अलग-अलग देखो। जैसे हंस दूध और पानी को अलग कर लेता है, वैसे तुम भी दोनों के स्वभाव की भिन्नता को जानो, पहचानो। निज का निज को दो, पर का पर को दो। मात्र रटने से कुछ नहीं होना है।

भूल यहीं होती है

शरीर शरीर का काम करे। आत्मा आत्मा का काम करे। संसार के हर द्रव्य का स्वभाव है परिणमनशीलता। परिणमन तो होगा, होता आया है: किन्तु जो परिणमन शरीर में होता रहा है, उसे हम अपना मान लेते है। भूल यही हो जाती है। जैसे गणित मे एक अंक की भूल सारे गणित को गलत कर देती है, वैसे ही हमारी यह एक भूल समस्त जीवन को भूलों का पिटारा बनाकर रख देती है।

प्रतिपल ज़रूरी

आत्म-लक्ष्यी वनोगे, तभी जीवन का कुछ सार निकलेगा। वाह्याचार तो कई भवों में मिला, पर मुक्ति नहीं मिली, चित्त में शान्ति का प्रवेश नहीं हुआ। कारण, केवल वाह्याचार मुक्ति देने में सक्षम नहीं है। आन्तर भावों की शुद्धि, कर्म-कालिमा की सफाई, अन्तर में आत्म-भाव की गहराई, प्रतिपल जरूरी है।

स्व-राज्य प्राप्त करे

दूरी का जरा भी ख्याल न करे। आत्मा सदैव पास है। अव तो अन्तर में ज्योति जलाने का समय आ गया है ज्योति जलाना है। सारे तन्तु तोड़कर स्वराज्य प्राप्त करना है।

बाहर क्यों भटकें !

अपनेपन का विश्वास जरूरी है। निश्चय ही इसे करना है, और व्यवहार में इसे बदलना है। बाह्य प्रवृत्ति तथा बाह्य दृष्टि दोनों ही बदलनी हैं। संक्षिप्त करनी है। आत्माभिमुख बने बिना कोई उपाय नहीं है शान्ति-प्राप्ति का। अमूल्य अवसर मिला है, देखो फिर पछताना न पड़े। इसकी खूब जागृति रखना है। हम, आप, सब बाहर क्यों भटकें, बाहर शान्ति का नामोनिशाँ भी नहीं है। शान्ति तो भीतर है। भीतर जाने का प्रयास करो। अन्तर की शान्ति को पहचानो। सुनो यदि पाया हुआ यह अमूल्य समय खो दिया, तो मरण-पर्यन्त पश्चात्ताप के सिवाय कुछ नहीं मिलेगा।

जानते हुए भी

मान-पूजा की इच्छा, अभिमान, अच्छा-बुरा, भाव सभी प्रकार का मोह अज्ञान है। ये सब आत्मघाती हैं। आत्मा का घात करते हैं, यानी आत्मभावों से विरक्त और अनभिज्ञ रखते हैं। जानते हुए भी पुरुषार्थ की गति उलटी बनी रहती है। लगता है, अभी संसार दीर्घ है।

सुन, लगा धुन

स्वाध्याय, वाचन और चिन्तन मनन में मन लगाना, ध्यान देना जरूरी है। आने वालों को भी स्वाध्याय के लिए प्रेरित करना है। यदि किसी जीव को इसकी धुन लग जाए तो काम बन जाए।

विद्या है विनय की माँ

विद्या तब फलती है, जब विनय हो। विनय गुणों का केन्द्र है। विनय बिना एक भी गुण आत्मा मे टिकता नही है। विनय बिना वपन-योग्य भूमिका ही नही बनती।

मुनियों के लिए मुनि साधर्मी है, अतिथि हैं। जितना प्यार-सम्मान दें, कम है।

सपूत कौन ?

आज यदि कोई युवक शराब पीता है तो आप ही बतायें उसने आपके कुल की शान बढ़ाई, या गँवाई? सपूत किसे कहते हैं, शान बढ़ाने वाले को, या गँवाने वाले को ?

हमारे धर्म की, हमारे बाप-दादो की शान न जाने पावे; बस, यदि इतना-सा नियम ले लो, तो भी पतन से काफी बच जाओगे।

वीरता की भाषा बोलो

बीमार के सामने बीमारी का वर्णन मत करो। बीमार से कहो "वह ठीक है। ऐसा तो होता ही है। कोई खास बात नही।" इससे बीमार का मन ठीक रहेगा। परिवार भी ठीक रहेगा। सकल्प-विकल्प कम होंगे। किसी को भी अपनी वाणी से, वर्तन से सकल्प-विकल्प का निमित्त मत दो। वीरतापूर्ण वाणी बोलो, मन को शूर-वीर रखो। वीरता को भाषा बोलकर सामने वाले को भी वीर बनाओ।

धर्म यानी कर्तव्य की अदायगी

व्यवहार से जिसके साथ, जो सबध बँध गया हे, उसे जीवन-पर्यन्त उसी रूप मे निभाना हमारा कतव्य ह। धर्म आत्म-स्वरूप को समझाने वाला होता है। सामान्य प्रक्रिया मे कर्तव्य की अदायगी करना भी धर्म की परिधि मे आता है।

संस्कार दिये तो सब दिया

वर्षों तक अभ्यास करने के वाद कौन-सा अभ्यास वाकी रह गया ? इस पर विचार करो। उत्तर है: आत्मदृष्टि की पढाई अभी शेष रह गई है। अपनी सन्तान को आप भले ही खूव व्यावहारिक शिक्षा दो, वकील वनाओ, वैरिस्टर वनाओ, इंजीनियर वनाओ, डॉक्टर वनाओ, कुछ भी वनाओ; पर साथ में आत्मदृष्टि भी दो, जड़-चेतन भी समझाओ, वीतराग धर्म की जो नींव है, आत्म-कल्याण की जो आधार-शिला है, उससे भी उसे वंचित मत रखो। व्यवहार के साथ आत्मा का भी वोध कराओ। धन दिया, कुछ नहीं दिया। लाख-करोड़ छोड़ गये तो क्या छोड़ा ? सव नाशवान है। यदि संस्कार दिये, तो सव दिया। संस्कारवान व्यक्ति जीवन में कहीं भी हार नहीं खायेगा, कहीं भी निराश नही होगा। यदि संस्कार नही दिये तो कभी रोयेगा, कभी हँसेगा, कभी गायेगा। नाना नाटक करते उस संस्कारहीन की जिन्दगी स्वयं नाटक वन जाएगी।

चमडे के माँ-वाप का भी उपकार है। उनको भी सपूत दुर्गति में नहीं जाने देते। सच्चे सपूत वे ही हैं, जो माँ-बाप को भी धर्म-कार्य मे लगाते है। आत्म-साधना का पथ पकडाते हैं। अब आपका वुढापा आया है–आपने खूब किया है, हमारे लिए, अब बैठो, आराम करो, भगवान् का भजन करो।

सच्चे माँ-वाप भी वे ही हैं, जो बच्चों को पेट पालने की शिक्षा के साथ-साथ धर्म-मार्ग पर लगाते है, सद्गति की राह दिखाते हैं। जिन माँ-बापों ने बेटे-बेटी को आत्मधर्म के रास्ते पर नहीं लगाया, वे चमडे के माँ-बाप है, आत्मा के नहीं, आत्मा के तो वे दुश्मन हैं।

वे बेटे भी बेटे नहीं है, जो वुढापा आ जाए और माँ-बाप से न कहे कि आप निश्चिन्त होकर धर्म-ध्यान करो। कई माँ-बाप ऐसे भी है, जो बेटा कहे तो भी धर्म-ध्यान में नहीं लगते। यह बात दूसरी है। शहद की मक्खी-जैसे, दुकान का मोह वे नहीं छोड पाते, उससे लिपटे रहते है।

यह तो डुबोने वाला है

सच्चा प्रेम वही है, जो आत्मा का हित करे। इस चमड़ी का हित करने वाले तो वहुत मिल जाते है। यह खाओ, वह न खाओ; यह पहनो, वह न पहनो; यह करो, वह न करो; ऐसी टोक-टकार करने वाले तो रात-दिन मिलते है, पर आत्म-हित की वात कि ऐसा मत करो, ऐसा मत सुनो, तुम्हारी आत्मा का नुकसान होगा, कर्म-वंधन होगा, आत्मा मलिन होगी, दुर्गति मे जाएगी, ऐसी वाते कहकर, सावधान करने वाले तो संसार-परिभ्रमण मे कम ही मिल पाते है। कदाचित् मिलते भी हैं तो हमे वे और उनकी वाते पसंद नहीं आती, सुहाती नही, खराव लगती है। हमे राग-भाव ही पसद है। हमे ऐसा प्रेम ही पसंद है, जो हमारे शरीर की चिन्ता करे, किन्तु शरीर की चिन्ता करने वाला प्रेम सही प्रेम नही है। यह तो डुवोने वाला प्रेम है। यह सच्चा हित नही है।

प्रेरणा दें भी, लें भी

साधू को चाहिये कि वह सदा साधू बनकर न रहे। अपने विगत बड़प्पन को न भूले। गुरु को चाहिये कि वह सदैव गुरपना ही न बताये। इन सब भावों को मिटाना है। ये सब भाव कषाय के कारण हैं। गुरु को चाहिये कि संयम-मार्ग को समझाने, या दिखाने के अलावा निर्देशकता का त्याग करे। संयम-मार्ग में भी प्रेरणा देने के साथ-साथ उसे स्वयं को भी प्रेरणा लेनी चाहिये। ऐसा नहीं कि मात्र शिष्यों को ही वह सन्मार्ग दिखाये। स्वयं सन्मार्ग पर न चलने वाले शासक अक्सर सफल नहीं हो पाते, कारण, शिष्य वर्ग में प्रतिकार के भाव पैदा हो जाते हैं। गृहस्थाश्रम में भी कार्य से निवृत्ति लेने की व्यवस्था है।

शान्ति-बीज

परस्पर प्रेम-भाव में रहना, यही शान्ति का बीज है।

ज्यादा श्रम, मेहनताना कम

जीवन का स्तर उठेगा तभी सार्थकता है, "वर्ना मेहनत ज्यादा, कम मजदूरी" वाली बात होगी।

एक दिन पकड़ में आ जाएगा

तत्त्व-ज्ञान के विना अन्तर्दृष्टि खुलती नहीं, अन्तर्दृष्टि के विना राग-द्वेष और अज्ञान मरते नहीं, खत्म होते नही और जव तक ये मरते नही, खत्म होते नही, तव तक मोक्ष-मार्ग की प्राप्ति होती नहीं। श्रीमद् देवचन्द्रजी, राजचन्द्रजी, आनन्दघनजी आदि संतों की अनुभव-वाणी जीवन में उतारकर आचरण में लाना है। वह पुरुषार्थ प्रवलता के साथ करना है। मनिराम (मन) नाचकूद करेगा। शुरू-शुरु मे तो वह वश में नहीं आयेगा, पर सतत् प्रयत्न करते रहने से एक दिन पकड़ मे आ जाएगा। पुरुषार्थ विना काम वनेगा नही।

कृपा या अकृपा ?

हम मानते है हमारा परिवार हम पर कृपा कर रहा है। परद्रव्य से कृपा कर रहा है। यह द्रव्य-कृपा भाव से अकृपा है। परिवार हमें वन्धनों से वचाने के रास्ते पर नही खीच रहा है, वल्कि जकड़ने के रास्ते पर खींच रहा है। हम अज्ञानी इस जकड़ने में ही मस्त है। परिवार, परिचय, परिग्रह नहीं जकड़ता है, हम स्वयं इनके नकली भभके में भ्रमित होकर जकड़ते जाते हैं।

विनाशी का साथ सर्वनाश

विनाशी और अविनाशी का जोडा वने भी तो कैसे ? साथ रहे भी तो कैसे रहे ? ससारी अवस्था मे ऐसा वनता है; परन्तु वह टिकना नहीं, निभता नहीं, वार-वार छूटता है, टटता है। कभी कौन से पुद्‌गलों के साथ, तो कभी कौन से पुद्‌गलों के साथ। स्थायी सवध नहीं जुड पाता। यह ससारी अवस्था में रह रहा है। सकर्मावस्था मे जीव भकटता है, यत्र-यत्र धक्के खाता है, विनाशी के साथ इसका अपना भी वार-वार विनाश होता है।

रंग को करो वेरंग

आत्म-कल्याण की तीव्र भावना जगा कर, अध्यवसायों में विषय-वासना का जो गहरा रंग चढ़ा है, उसे प्रयत्नपूर्वक सतत् जागरूक रहकर भेद-ज्ञान द्वारा 'मैं आत्मा हूँ, देह नहीं हूँ' इस मंत्र के सतत् जाप से हलका करना है। तीव्र उत्कण्ठापूर्वक इस कार्य में लग जाना है। वंध के अधिकाश कारण विषय-कषाय-जन्य संकल्प-विकल्प ही है, इन्हें कम करना है। केवल क्रिया वंध का कारण नहीं है। क्रिया के साथ भाव ही वंध का कारण है। भाव यदि साथ न हो, तो अकेली क्रिया बांधने मे कदापि समर्थ नही है, अतः सबसे पहले इन भावनाओं की विशुद्धि का, ध्यान रखना आत्म-कल्याण के जिज्ञासु के लिए आवश्यक है, अतः सबसे पहले इन्हे कम करो।

कैसे थे वे लोग ! !

एक समय ऐसा था, जब अपने चेलों को दूसरे सम्प्रदाय के आचार्यों के पास पढ़ने के लिए वर्षों तक के लिए भेज दिया जाता था, और आचार्य भी निःस्वार्थ भाव से, बड़े प्यार से दूसरे सम्प्रदाय के मुनियों को ज्ञान देने को तत्पर रहते थे। न कहीं शब्द की गुंजाइश थी, न कहीं लोभ-लालच था। आचार्य उत्कृष्ट भाव से ज्ञान के प्याले भर-भर कर थमाते थे और मुनि गटागट पीते जाते थे। वे मेघ समान समत्वमय भावों के धनी आचार्य अपने संचित ज्ञान का खजाना खोलते ही जाते थे और प्रतिभावान/प्रज्ञावान वे मुनि जारोगते ही जाते थे। कैसा था वह काल ? कैसे थे वे उच्च मानस ? जिनमें कहीं भी, लेश मात्र भी भेदभाव की गंध तक नहीं थी। अपने व पराये शिष्य का भाव बिल्कुल नहीं होता था। मात्र योग्य पात्र देखकर वे ज्ञान की वर्षा कर देते थे। आज न तो हम अन्य आचार्य के पास अपने शिष्यों को भेजने की उदारता रखते हैं, न निष्प्रयोजन भाव से आचार्य पढ़ाने की क्षमता वाले हैं। काल देवता की बलिहारी है, मनुष्यों के मन ही बदल गये हैं।

आत्मदृष्टि : सही चावी

ज्यों-ज्यों मन जगत् से हमारा/आपका अलगाव होता जाएगा। अलगाव अर्थात् अनासक्ति; यही तो भाव, बन्धभाव को कम करने की चावी है। ताला खोलना होता है; किन्तु किस चावी से ? जो सच्ची/सही चावी होगी उसी से न ? भगवान् महावीर की वाणी की सच्ची चावी ले लो और फटाफट ताले खोलते जाओ। कहीं ताले बन्द मत कर डालना। यह एक ही चावी दो काम करती है। ताला खोलती भी है, ताला बन्द भी करती है। आप जब घर के ताले खोलते है, तिजोरी के ताले खोलते हैं तब अलग-अलग चावियों से खोलते हैं, बन्द करते हैं या नहीं ? बस यहाँ भी "दृष्टि" की एक ही चावी काम करती है। जो चावी सद्गति का, सिद्धि का द्वार खोलती है, वही चावी दुर्गति का, संसार का द्वार बन्द भी करती है, आस्रव का द्वार बन्द कर देती है। निर्जरा का द्वार खोल देती है। जो चावी बन्द का काम करती है, वही चावी खोलने का भी काम करती है। यदि आत्मदृष्टि की चावी हाथ में आ जाए तो काम बने। दूसरी चावियाँ लगाने से काम नहीं चलेगा। जो मजबूत होगी, नामी कम्पनी की होगी, वही चावी लगेगी। बस, यह बात समझो।

आपका वस्त्र यह है

ममत्व-भाव जब तक नहीं टूटेगा, भव-बन्धन तब तक नहीं छूटेगा। "यह मेरा नहीं है"—ऐसा दृढ विश्वास जब तक नही आयेगा, तब तक मेरापन, रागभाव नहीं टूटेगा। जहाँ ऐसा विश्वास आया, समझ मे आया कि "यह मेरा नही है" बस वहीं रागभाव तुरन्त छूट जाता है। तब मन त्याग मे, छोड़ने मे जरा भी नही हिचकिचाता। राग-दृष्टि इतनी जल्दी बदल जाती है। धोबी ने भूल से किसी दूसरे का वस्त्र आपको लाकर दे दिया, आपने अपना मानकर पहन भी लिया, पर ज्यों ही धोबी आपको अपना वस्त्र लाकर देता है और कहता है मालिक भूल से वस्त्र बदल गया है, आपका वस्त्र यह है, आपने दूसरे का वस्त्र पहना है, खोल दीजिये ! आप तुरन्त आनाकानी किये बिना झट वस्त्र उतारकर धोबी को सौंप देते है। बस, हमे भी यही करना है।

कमाना है, पर यह कैसा कमाना है कि रात में नौ, दस, बारह बजे तक भोजन करें। हमारा सामाजिक रवैया भी बदल गया। पारिवारिक जीवन भी बिगड़ गया।

आज से पचास वर्ष पहले विवाह के जीमन (भोजन) सवेरे होते थे, दिन में खाते थे। शाम को बचा-खुचा, साग-भाजी बेचारे गरीब ले जाते थे, खाकर प्रसन्न होते थे। चलो, बचा, सब काम आ गया। आज तो रात्रि के बारह बजे तक खाते-पीते है, फिर आराम से उठेंगे, बचा-खुचा नाली में, गटर में डालने लायक रह जाता है। लेने आयेगा कौन, जब देने वाले की भावना खिलाने की नही है तो खाने वाला भला क्यों आने लगा ?

विवाह शादी मे, बड़े-बड़े भोजनो में, पार्टियों मे रात में खाना-खिलाना। आलू, गोभी, प्याज, बनाना, यह क्या जैनियों के लक्षण है? ये जैनियों के काम तो नही है, आप कैसे जैनी है ? अपने पीछे आप "जैन" होने का पुछल्ला लिये फिरते हैं, लेकिन आपका एक भी काम तो "जैन" कहलाने के लायक नहीं है। महावीर के बेटों में और अन्यो में फर्क क्या हुआ ? आप अलग किस बात मे है ? यदि आप अपने घर में कोई भी गलत काम करेंगे; यदि आप ग़लत परम्परा डालेंगे तो आपका बेटा सबसे पहले ग़लत काम करेगा।

धन है बंधन

धन जीवन-निर्वाह का साधन हो सकता है, जीवन-निर्माण का नहीं। आपके पास थोडा-सा धन है, आप जीवन-निर्वाह के साधन एक-से-एक जुटा सकते हैं। आप रहने के लिए चूने का, मावल का मकान बना सकते हैं, सोने का काम करा सकते हैं, हीरे-पन्ने के जेवरों से अपने शरीर को लाद सकते हैं, बढिया-से-बढिया कपडे पहन सकते हैं, मेवे-मिष्ठान्न खा सकते हैं, इस तरह आप जीवन-निर्वाह के साधनो का अम्बार लगा सकते हैं। साधनों में आप धन का उपयोग किसी भी रूप में कर सकते हैं, किन्तु जीवन-निर्माण मे धन एक इंच भी टिके इतनी भी गुंजाइश नहीं है।

राजा-महाराजा हो, सेठ-साहूकार हो धन-संग्रह से तो जीवन-निर्वाह ही होगा। जीवन-निर्माण मे तो उसे भी तप, त्याग, अहिंसा, संयम, सत्य इत्यादि का ही आश्रय लेना होगा। इस मिट्टी की साधना से मिट्टी का ही निर्वाह हो सकता है, चेतन से उस मिट्टी को कुछ भी लेना-देना नहीं है।

जीवन-निर्माण मे जड साधन की जरूरत नहीं रहती, जीवन-निर्वाह में ही वह उपयोगी है। चेतन चिदानन्द के गुण जीवन-निर्माण में साधन बनेंगे, धन नहीं।

मैं : सबसे भिन्न

प्रतिपल/प्रतिसमय साधक जीव को "मैं पर से भिन्न हूँ" इस बात पर जोर देना चाहिये। इसी भावना को दृढ़ता के साथ सक्रिय बनाने के प्रयत्न में लग जाना चाहिये। मैं इससे भिन्न, उससे भिन्न, इन सबसे भिन्न – ऐसा भिन्नत्व हमारी आँखों में, अन्तर्दृष्टि मे, आ जाना चाहिये। हर पल अपने भिन्नत्व का बोध, अपने भिन्नत्व का अहसास बना रहना चाहिये। बाह्य दृष्टि से तो हमें आत्मज्ञान के आधार पर, सुनी-सुनायी बातों के उपदेशों के आधार पर, सबसे परे अपना भिन्नत्व ज्ञात है। यह वस्तु, यह पदार्थ मेरा नहीं है, यह बाहरी भिन्नत्व दृष्टि है। अन्तर की भिन्नत्व नजर की स्थिरता ही आत्म-कल्याण का हेतु है।

कोई नहीं, कुछ नहीं

"मैं सबसे भिन्न हूँ", ऐसी दृष्टि हमारे अन्तर में सतत् खुली रहनी चाहिये, हृदय में आ जानी चाहिये। ऐसा होना कठिन है; क्योंकि बाह्य-दृष्टि का जोर है। "पर" मे मोहदृष्टि की प्रबलता है; किन्तु सतत् प्रयास, हर पल टंकोरे मारते जाओ : "मैं आत्मा हूँ, मेरा कोई नही, यह भी नहीं, वह भी नहीं, मैं निराला सबसे अलग-थलग आत्मा हूँ। कोई नही, कुछ नहीं। कोई व्यक्ति मेरा नही, कोई पदार्थ मेरा नहीं।" ऐसी साधना करनी चाहिये ताकि अपना कार्य जल्दी बने।

नाम चल रहा है, काम नही

आप अपने वालकों को व्यावहारिक ज्ञान, जरूर दे, पर आध्यात्मिक ज्ञान देना भी न भूले। यों तो अलग-अलग स्कूल, पाठशालाएँ, कॉलेज हम चला ही रहे है, वे साम्प्रदायिक भेद से चल रही है। गच्छ-भेद से भी चल रही है। यह दिगम्बर पाठशाला है, यह गुजराती पाठशाला है, यह तपागच्छ की पाठशाला है, यह खरतरगच्छ की है, यह तेरापथ की है, यह स्थानक की है, कही कुछ, कहीं कुछ चलती रहती हैं। पर नाम चल रहा है, काम नहीं, जिस स्थिति की शिक्षा पाठशाला मे देनी है, उस बात से स्थानीय मध वेखवर है। क्या पढाने से वच्चों का निर्माण होगा, क्या पढाने से स्तर गिरेगा ? इसकी चिन्ता पडी ही नही है। सोचने का समय ही कहाँ है ?

गये पाठशाला का निरीक्षण करने, क्या निरीक्षण किया ? घूम आये, वच्चों की सख्या पूछ आये। जिस स्कूल मे अधिक वच्चे है, साफ-सुथरी जगह है, काम व्यवस्थित है, "वह स्कूल अच्छा है" इसका प्रमाण पत्र उसे दे आये। पर इस प्रमाण-पत्र के आधार पर वच्चों के जीवन-निर्माण की आधार-शिला नही रखी जाती। वह तो वच्चों की विनयशीलता, विवेक, शालीनता, सभ्यता, धार्मिकता आदि पर ही निर्भर करेगा।

व्यवहार के साथ अध्यात्म भी

शिक्षा के स्तर को हम व्यावहारिक बनाने के साथ-साथ आत्मिक भी बनायें, सद्गुणों की बगिया महकायें, रंग-बिरंगे फूल खिलायें, फल लगायें; समाज का, संघ का, देश का, राष्ट्र का गौरव बढ़ायें। धन के साथ-साथ धर्म की गहरी छाप डालने में सक्षम मानस गढ़ें, तभी यह शिक्षा सार्थक है; अन्यथा मात्र पेट पालने वाली शिक्षा देना, शिक्षा का घोर अपमान है।

आपने अपने बच्चों को वकील बनाया, बैरिस्टर बनाया, डॉक्टर बनाया, इजीनियनर बनाया, पैसा कमाने को विदेश भी भेजा, किन्तु आत्मा को समझने वाला ज्ञान भी दिया या नहीं ? विचार करें।

आत्मज्ञान, जड-चेतन-विज्ञान को समझाने के लिए जैन समाज के पास कितने विद्यालय हैं, कितने कॉलेज और स्कूल हैं ?

केवल व्यवहार की शिक्षा, पेट की शिक्षा, परिवार की शिक्षा। इसके अलावा परिवार में कैसे रहना ? क्या करना ? यह भी आपने समझाया-सिखाया है। शिक्षा के नाम पर करोड़ों रुपये खर्च करके भी जीवन-शान्ति नहीं, ऐसा क्यों है ? कभी सोचा, बेटा-बाप की माने नहीं, माँ को पूछे नहीं, बीमारी में सेवा करे नहीं, खान-पान की व्यवस्था करे नहीं। विनय, विवेक सिखाया नहीं, संसार का स्वरूप बताया नहीं। बेटा, पढ़ो और धन कमाओ। जड़ विद्या ने उसके मन को जड-जैसा कर दिया है। वह अपने घर को जानता ही नहीं है, अनुभव करे भी तो कैसे ? पन्द्रह-पन्द्रह वर्ष पढ़ाई में लगा देते हैं, लाखों रुपया खर्च कर देते हैं, पर आत्मा-परमात्मा का

ज्ञान समझाने के लिए पूरे दिन का १०० वॉं हिस्सा देना भी आपको पसन्द नही है। सौ रुपये का शिक्षक तो दूर की वात है; आपने कभी समाज में चलने वाली पाठशालाओं में भी वच्चों को भेजने का मन नही किया होगा। माँ-वाप आपको कैसे कहें ? माँ-वाप और वच्चे के भविष्य, उसके हित-अहित की चिन्ता न करें, ऐसा कैसे हो ? आप चिन्ता करते है, कैसी ? रुपये वटोर कर लाये, ऐशो-आराम की जिन्दगी विताये। विवाह-शादी में खूव गाजे-वाजे, ढोल-धमाके, आतिशवाजी हो, दिल खोलकर खर्च करे, समाज में हमारी नाक ऊँची हो। अरे ! यह चमड़े की नाक है, चाम का टुकड़ा है, यह क्या ऊँचा या नीचा होगा ? यह तो कुदरत ने जैसी वनायी - वैसी वन गयी, इसे क्या पता ऊँची और नीची का ? सव आपके ही मन की भ्रान्ति है। दो पैसे के वल पर आप अपने आपको ऊँचा-नीचा मानते है। आप चेतन चिदानन्द की कीमत पैसों में ऑक रहे हैं; पर ध्यान रखें, इस आत्माराम की कीमत धन में कभी नही ऑकी जा सकी है।

पूज्य है ज्ञान धन

अरे ! यह चेतन चिदानन्द है तो इसके सामने पैसे का कोई उपयोग नहीं है। करोड़ों रुपये हों तो कौड़ी की कीमत नहीं। चेतनराम की कीमत तो चेतनराम का ज्ञान है, यहा ज्ञानी की पूजा है, धनवान की नहीं है। धनवान के पीछे धन के भूखे लोग वाह-वाह करके चापलूसी करने वाले होते हैं, हार्दिक सम्मान उनके भाग्य में नहीं लिखा होता है।

•

आवरण हटायें, धूप में आयें

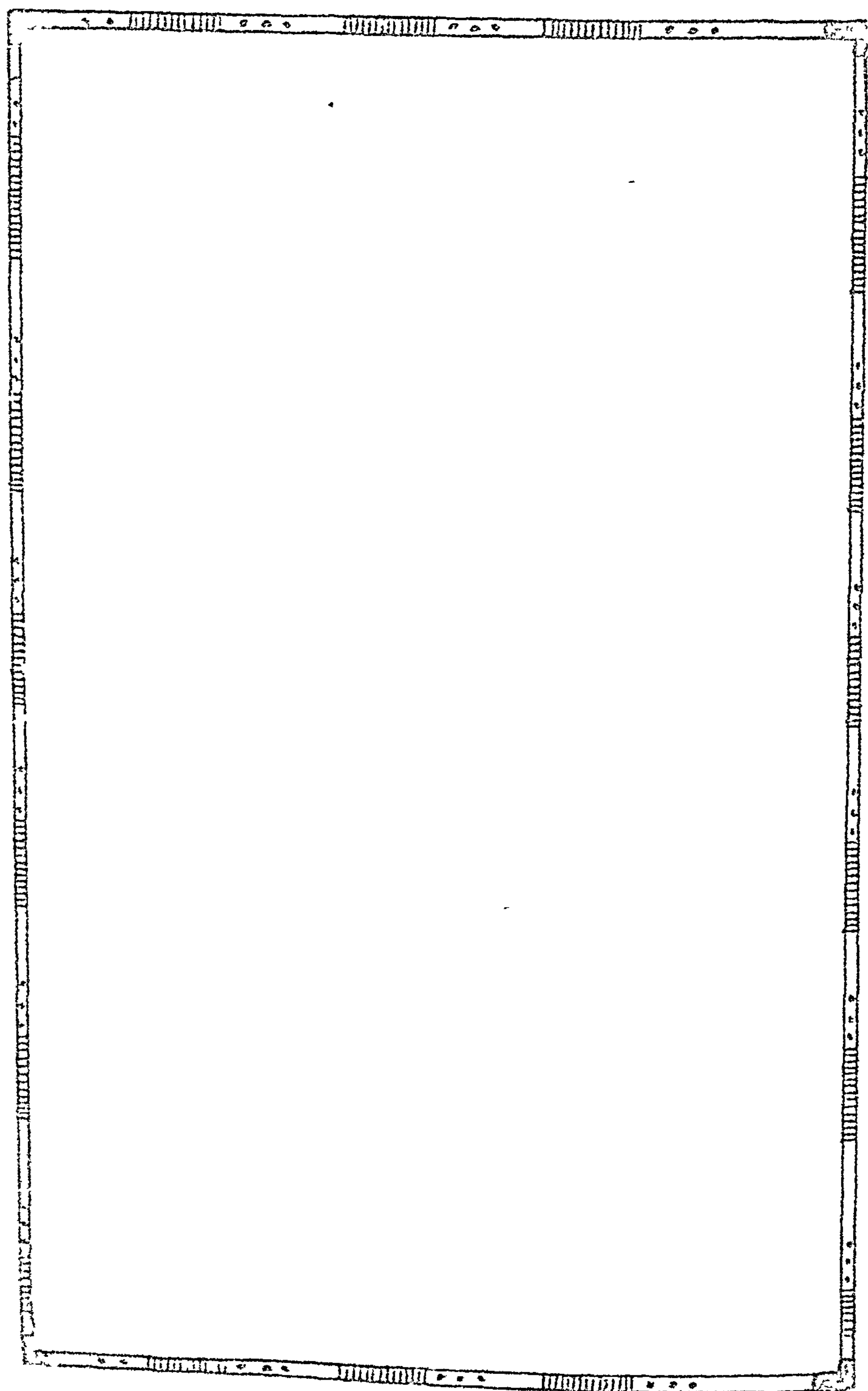
देखो, सूर्य के प्रकाश पर आवरण आ जाता है, किसका ? बादलों का। प्रकाश मंद हो जाता है, धुंधलापन छा जाता है। आवरण हटा और तेज धूप। तब देदीप्यमान सूर्य मध्यम किरणों से प्रकाशमान दिखायी देता है, या नहीं ? वैसे ही आत्मा पर कर्मों का आवरण छाया है। घना आवरण छाया है, कर्मों के ये बादल हटें तो हमारा ज्ञानस्वरूप चित्स्वरूप, चैतन्यस्वरूप, चिदानन्द स्वरूप, आनन्द स्वरूप प्रकाशित हो। कर्मों के ये आवरण हटें तो सूर्य-समान हमारा भी तेज स्वरूप, नूर स्वरूप प्रगट हो।

भाई का कर्तव्य

सच्चा स्नेही होता है तो अपनी उपलब्धि अपने स्नेही को जरूर बताकर उसे सन्मार्ग पर लगा देता है। यदि भाई भाई को कुछ नहीं देता है, तो समझ लो भाईपने का दिवाला है। एक भाई सुखी है और एक भाई दुःखी है। सुखी यदि दुःखी का दुख न मिटाये तो समझ लो भाई केवल नाम का है, काम का वह नही है।

बाँझ धरती में कैसे अँकुरायेगा बीज ?

कर्तव्य-वीर आत्मा ही धनवान है, ज्ञानवान है, गुणवान है। सोचो, जहाँ कर्तव्य-बुद्धि का दिवाला ही निकल जाए वहाँ मानवता का दिवाला तो पहले ही निकल चुका है। जब मानवता का ही दिवाला निकल जाए, तब धर्म-दृष्टि कब टिकने वाली है, फिर बाहर से भले ही धर्मात्मा की छाप हम लगा लें, धर्म-क्रियाओं की ठेकेदारी कर ले, पर जहाँ मानवीय गुणों का अभाव है, दया और करुणा का अभाव है, क्षमा और सरलता का अभाव है, प्रेम और सद्भाव का अभाव है, तो सही रूप मे वह बजर भूमि बीज डालने के लायक नहीं है। योग्य भूमि मे डाला गया बीज ही अकुरित होता है, लहलहाता है, वर्ना अयोग्य भूमि मे डाला दाना नष्ट हो जाता है। मैंने जब रत्न पाया, आत्म-धन पाया, आत्मनिधि पायी है तब अपने स्नेहियों को, अपने आत्मीयों को क्यों न दूं ? भाई के दिल मे यदि भाई का प्यार है तो क्या वह धन का बँटवारा नहीं करेगा ? जरूर करेगा, इतना ही नहीं वह भाई को और अधिक देने की चेष्टा करेगा।



साधना



मुश्किल से एक-दो

कहने वाले हजारो मिल जाते हैं। सुनने वाले लाखों, सुनकर समझने वाले भी अधिक नहीं तो सैकडों तो मिल ही जाते है, किन्तु कहकर, सुनकर, समझकर आचरण मे लाने वाले मुश्किल से एक-दो ही मिलते हैं।

नर हो, न निराश करो मन को

जो-जो सामने आये, उसमे निपटो। भूत-भविष्यत् को भूल जाओ। उत्साह-हीन न बनो।

बेधडक रहो

महावीर की पुत्रियों को इतना भय क्यों ? आत्मनिर्भर बनो। भविष्य की इतनी कल्पना, इतनी चिन्ता उचित नही। बेधडक-निर्भय रहो।

प्रतिदिन एकमात्र यही प्रयास कम-से-कम हो कि कल्पना तथा जल्पना कम-से-कम हो। सफलता जरूर मिलेगी। अभ्यास सफलता की कुंजी है।

नीचे नहीं उतरना है

प्राप्त परिस्थितियों में, प्राप्त समय मे, दिन-रात के चौबीस घण्टों में अशुभ का सग्रह न करे। जो है उसे घटाने का प्रयास करे, क्योंकि हमे प्राप्त मंजिल मे अब कम-से-कम नीचे तो नहीं उतरना है।

राजमार्ग

सुबुद्धि से बोध, बोध से भावना, भावना से भक्ति, भक्ति से शान्ति, और शान्ति से मुक्ति का मार्ग-अध्यात्म का राजमार्ग है।

निराला सुख

शान्ति यानी निरुपाधिक सुख, अक्षुब्ध, निर्विकारी आनन्द, सामान्य सुखों से निराला जिसे नित्य, शाश्वत, सत्य, आत्म सुख कुछ भी कहा जा सकता है।

वेश-परिवर्तन करने मात्र से मुनित्व नही आ जाता, न उससे आत्महित ही होता है। गुरुनिश्रा में गुरुदेव की आज्ञापूर्वक जीवन-धन की संयोजना करने से मुनित्व खिलता है।

अप्रमत्त बनो

चौदह पूर्वी सम्यक् दृष्टि बनने के पश्चात् चूका तो धीरे-धीरे सभी पूर्व साफ। वृत्तियाँ भी साफ। पुनः चार गति मे भटकाने वाला संसार बढ़ा लिया, इसलिए हमे बहुत सावधानी इस बात की रखनी है कि हम जहाँ तक आ पहुँचे है, वहाँ प्रमाद द्वारा अशुभ का संग्रह न करे।

प्रमाद के पकडो कान

हमे अपनी प्रणाली को पकड कर चलना है। चाल मे तेजी लानी है, जितना करना सभव हो उसमें प्रमादी नही बनना है। यदि कभी प्रमाद आये तो उसे कान पकड कर निकाल देना है।

सचोट आत्मसिद्धि

मैं आत्मा हूँ, शरीर नही, चेतन हूँ, जड नहीं, परिग्रह नहीं, पदार्थ नहीं, कम नही, इतनी सचोट आत्मसिद्धि जिनके जीवन मे उतर आती है। वे भाग्यशाली तेरे-मेरे क तुच्छ विचार मे कैसे उतरेंगे ?

किन्तु

दूसरा तो बाहर की क्रिया-व्यवहार म जान सकता है, किन्तु आपके मन का चित्र तो आप ही जानेंगे, मै क्या जानूं कि आपके मन मे क्या है ? इसे तो सर्वज्ञों पर ही छोडना होगा।

सक्रिय करुणा, सफल करुणा

करुणाभाव रखने मात्र मे कुछ नहीं होगा करुणा तो करनी होगी जीवों पर। सक्रिय करुणा ही फलदायक है।

भीतर सब कुछ है

व्यावहारिक क्रियाओं से भी जीव ऊपर उठता है; किन्तु क्या धर्म बाहर मिलेगा ? नहीं; बाहर में कहीं भी धर्म नहीं है, आत्मा का धर्म आत्मा में ही है ।

सूर्य बनो

घर का उजाला मिटा कर पर को उजाला बाँटते फिरे, ऐसा उजाला किस काम का ? जो स्वयं को प्रकाशित करे, अन्यों को भी प्रकाशित करे, ऐसे उजाले बनो । दीपक कभी मत बनना, जिसके तले सदा अँधेरा छिपा रहता है । सूर्य बनो, जो स्वयं प्रकाशित होकर जगत् को प्रकाश देता है ।

धर्म भी, धन भी

अधर्म का धन किसी काम का नहीं । वह राजनीति के मार्ग पर भटकाने वाला है । धर्म है और धन नहीं तब भी जीवन शान्तिमय होगा; पर जहाँ धन का अम्बार है और धर्म का अभाव है वहाँ विपत्तियाँ, मानसिक अशान्तियाँ अठखेलियाँ करती मिलेंगी । कमर में चाबियों का गुच्छा लटका कर बजाने से ही जीवन-शान्ति नहीं मिलती, शान्ति धर्म पर निर्भर है ।

अन्तर्दृष्टि खोलें

रति और अरति दोनों भावनाओं को समाप्त करना है। दृष्टि खुलने के बाद छह खण्ड का अधिपति भी एव शालिभद्र-जैसा श्रीमत भी तप्तशिला पर अनशन कर सकता है। दृष्टि खुले बिना, भीतर से जागृति आये बिना कुछ भी परिवर्तन सभव नही है। एक हम है, जो जरा-सी प्रतिकूलता मे घबरा उठते है, मन मे परिवर्तन नही कर पाते।

तपस्या भी, स्वाध्याय भी

तपस्या तो करते ही हो, अब स्वाध्याय मे भी लगो। मौन करो। बन सके तो ध्यान भी करो। जीवन जा रहा है। ज्ञान बिना अन्तर्दृष्टि नहीं खुलेगी। दृष्टि खुले बिना जागृति नहीं आयेगी। जागृति के बिना साधना में मन नही लगेगा, अत खूब वाचन, मनन, चिन्तन करो। खूब आगे बढो। बाकी सब व्यर्थ की माथा-कूट है। कुछ भी आनी-जानी नहीं है। आत्मभाव मे लगो।

कारगर उपाय

बाह्य प्रवृत्ति तथा बाह्य दृष्टि दोनों को सक्षिप्त करना है। इसके अलावा कोई कारगर उपाय नहीं है। बहुत ज्यादा बाहर नहीं भटकें, आत्माभिमुख बनें। यदि दुर्लभ अवसर पा कर खो दिया तो मरण-पर्यन्त पश्चात्ताप बना रहेगा।

संकट में भी मस्ती

प्रतिकूलता में भी अनुकूलता जैसी मस्ती रखना है। क्षमाशील बनना है।

निर्विकल्प बनो

"जगत् जीव है कर्माधीना"–यह मंत्र ध्यान मे रखने जैसा है। तुम भी शान्ति मे रहो, अन्यों को भी शान्ति में रखना सीखो। अनुकूलता-प्रतिकूलता भी तो मन की ही कल्पनाएँ हैं। निर्विकल्प बनने का प्रयत्न करना है।

इन्हे बिदा करो

व्यर्थ की माथा-कूट, परपंचायत, व्यर्थ का ध्यान, व्यर्थ की बाते, व्यर्थ की कल्पनाएँ; "कौन क्या करता है", "क्या कहता है" ये सब आदतें आत्म-अहितकर है। इन्हे हटाओ, इनमे परिवर्तन करो, इन्हें विदा करो। इन सबसे उदास बनो। हमें क्या ? हमे तो अपना सँभालना है।

सहजता : सबमें भली

वास्तविकता में रहो, अवास्तविकता (कृत्रिमता) को समाप्त करो। थोड़ी भी समझदारी यदि आयी है, तो उसके लिए तो वास्तविकता, स्वाभाविकता, सहजता ही शोभास्पद होती है, वर्ना मजाक का, हास्य का कारण बनती है। शान्तिमय जीवन के लिए सहजता भली है।

इतना ही

किसी का जीवन सक्लेशमय मत बनाओ। इतना ही कहो, जितना सामने वाला पचा सके। उपदेश और हितकारी वाणी भी कभी-कभी क्लेश का कारण बन जाती है। कहने के आशय मे, लहजे में भी कभी-कभी भूल हो जाती है, इसलिए हितकर भाषा भी इतनी ही बोलो जितनी से सुनने वाले में अशान्ति का कोई निमित्त उठ खड़ा न हो। यदि सक्लेश होता हो तो अच्छी-से-अच्छी शिक्षा भी तुरन्त बन्द कर दो।

निक्षेप

तेरा नाम हेमलता है, यह हुआ नामनिक्षेप। हेमलता का शरीर, हेमलता का चित्र, या तस्वीर यह स्थापना-निक्षेप। हेमलता का कार्य करते तक हेमलता द्रव्य-निक्षेप और हेमलता होने पर भाव-निक्षेप।

रास्ता साफ है

हमें जिस मंजिल पर पहुँचना है यदि बीच से वापस नहीं मुड़े तो समझ लीजिये करोड़ मील चलना था उसमें से ९९ लाख मील हम चल चुके हैं। जो बचा है वह एक लाख मील भी पूरा नहीं है। रास्ता साफ है, किन्तु शर्त है कि अब इस मार्ग से वापिस अपना मुँह न मोड़ें, लौट न पड़ें।

चलो, चलें भीतर

चौदह पूर्वधारी, ज्ञानवान, मुनि को भी चार गति मे जाते देर नही लगती । चौदह पूर्व का ज्ञान पाने के पश्चात् भी ऐसी वात है, तो फिर हम क्या है ? पासंग में भी नही है । हम तो अभी मात्र वाहर का खेल खेल रहे है ।

पहले वने शिष्य

एक-दो शिष्य वने नही कि वड़प्पन आया नहीं । सोचते है, वस, अव तो हम वड़े हो गये है । "वड-प्पन" वड़ी जल्दी आ जाता है । पर जव शिष्य वनना ही नही आया तो गुरु वनना कैसे आयेगा ? वस फिर धमाधम शुरू हो जाती है । वडप्पन के विना वड़प्पन का नतीजा क्लेश ही होता है ।

आत्मशोध

सामान्य वोध व्यवहार में काम करता है, विशेष आत्मा की शोध मे । व्यवहार के जाल में रह कर आत्मवोध को टिका लेना भारी दुष्कर कार्य है । निमित्ताधीन मन चल-विचल हुए विना नहीं रहता, अतः आत्मघाती निमित्तों से वचना है ।

माताएँ हो ऐसी

भौतिकता का दूध पिलाने वाले तो सर्वत्र सब गतियों में मिले हैं, मिल जाते हैं, किन्तु आध्यात्मिकता का अमृत पिलाने वाले विरले ही मिलते हैं। चमड़े को प्यार-दुलार करने वाले तो सभी माता-पिता होते हैं, किन्तु आत्माओं को प्यार करने वाली आर्यरक्षित की माता-जैसी माताएँ विरली ही मिलती हैं। जिस माता ने जन्म-मरण की मार से बचाया। दुर्गति का छेदन-भेदन कराया। पशु और पक्षी के जीवन से बचाया। कीड़े और मकोड़ों-जैसे जीवन से बचाया। आत्मज्योति का दीपक जलाने का मार्ग पकड़ाया। ऐसी माता सब के लिए उपकारी है। संसार में फँसाने वाली, भटकाने वाली माता तो हम सब को कई मिलती हैं।

टिकिट कट रहे हैं

समस्त परिवार, सारा वैभव, परिजन सदा रहने वाले नही हैं। सभी को छोड़ कर जाना पड़ेगा। टिकिट कट रहे हैं, लोग जा रहे हैं, धड़ा-धड़ जा रहे हैं। जाने वालों की लाइन में हम भी खड़े है। कितने मूर्ख हैं, जो जाने की लाईन में लगने पर भी इधर-उधर (मेरा-मेरा) में समय नष्ट कर रहे हैं। अपने सामान की सुरक्षा न करके दूसरों के सामान को अपना मान कर बटोरने मे लगे है; सोचो तो, पर अपना माल ले जाने कौन देगा ? ऐन समय पर लोग छीन लेंगे, खींच लेंगे। अरे मूर्ख, तुम पराये धन की लालसा को त्यागकर अपने धन की रक्षा करो; उस धन की, जिसके मुकावले सब धन धूल समान है। पर यह अनादि संस्कारो से संस्कारित आत्मा इस मर्म को समझना नही चाहती कि सब जाने वाला है, छूटने वाला है। निश्चल है : आत्मा; आत्मधर्म।

समझदार कौन

यदि सुबुद्धि के अनुकूल मन, मन के अनुकूल इन्द्रियाँ चले तो ही जीवन-व्यवहार आत्मा के अनुकूल होता है। इसके विपरीत यदि इन्द्रियों के पीछे मन और मन के पीछे बुद्धि भागने लगे तो अनर्थ हो जाता है। जैसे यदि सवार के हाथ मे लगाम और लगाम के अधीन घोडे रहे तो मुकाम पर मजिल पर निरापद पहुँचा जा सकता है, किन्तु इसके विपरीत यदि घोडे के हाथ लगाम और लगाम की तावेदारी मे सवार हो जाए तो गन्तव्य तो गन्तव्य जीवन को भी खतरा पैदा हो जाता है, अत समझदार को अपनी बुद्धि और अपने विवेक के अनुसार चलना चाहिए।

सागर है तू खुद

अरे ! तू स्वयं सागर है और ओस की एक बूँद के लिए दर-दर मारा-मारा भटक रहा है। अपने भीतर झाँक तो सही अमृत का कैसा सागर-सरोवर हिल्लोरें मार रहा है, पीता ही जा, पिलाता ही जा। बाहर से नजर समेट, भीतर देख। बस इतना ही करना है। बाहर से मन को हटा ले। परिवार, परिचय, परिग्रह से चिपके मन को तोड़ कर भीतर अपने-आप में लगा ले, फिर आनन्द ही आनन्द है। तेरे भीतर आनन्द-अमृत का अखूट भंडार है। मात्र दृष्टि की भूल से दिखाई नहीं दे रहा है। इस भूल की भूल-भूलैया से बाहर आ जा। अपने आपको देख। बस बाहर देखने वाली नजर को भीतर ले जा।

मरण का करो स्मरण प्रतिदिन

जो जन्मता है, उसका मरण भी निश्चित है, अत हमे तो "जन्म" को ही खत्म करना है । जन्म मोह-रूपी पाप के उदय से मिलता है । जन्म पाया है तो मरना भी निश्चित है, अत मरण को रोज याद करो और उसके लिए तैयार रहो, कारण, खबर नहीं वह कब आ जाएगा यानी हमेशा शुभ भाव में ही रहो । शुद्ध भाव तो अभी इस भूमिका मे अशक्य है ।

वह है महान्

मान-सम्मान पाकर कोई महान् नही बना जाता । मान-सम्मान को पचाने वाला महान् होता है, यानी मान-अपमान दोनों की प्राप्ति म जो सहज रह सके वह महान् है ।

निज धन

हमारी आँखों मे मोह-मूर्च्छा का मैल भरा है, उसे साफ करना है, वर्ना सब धुंधला दिखेगा । अपना "निज धन" नजर ही नहीं आयेगा । बात अब बन रही है । अभी समय है कि तू अपनी आँखों मे लगे मोह के मैल को, चश्मे को, अलग करे, समझ कि यह मोह-मैल क्या है और इसे कैसे हटाया जा सकता है ?

आत्म प्रकाश

राग, द्वेष, तृष्णा, लोभ, मान, माया, ईर्ष्या, डाह सब मोह मैल हैं। जिस क्षण यह मल नाश होगा, उसी क्षण पूर्ण आत्मप्रकाश चमक उठेगा।

मैल का ज्ञान

मैल का सर्वथा अभाव तो होगा, केवल-ज्ञान की अवस्था मे; किन्तु मैल का ज्ञान, मैल की जानकारी होगी सम्यक् दर्शन मे। ये दोनों ही क्षण आत्मा के लिए मंगलकारी क्षण होंगे।

प्रमाद : कम-से-कम

खूब विवेक से, आत्मिक विचारपूर्वक, आत्मजागरण के साथ संवर और निर्जरा की तरफ ध्यान देना। बंध भाव से सर्वथा बचने की चेष्टा करना। प्रमाद कम-से-कम करना। कषाय भावों का त्याग करना। अन्यों को भी अपने द्वारा कषाय का निमित्त मत देना; व्यवहार-कुशल भी खूब रहना। यह उपदेश हृदय पर अंकित कर लेना। यह बार-बार नही लिखा जाएगा। इसे प्रतिदिन प्रात.काल मे दोहरा लेना।

सही गन्तव्य

देह का काम देह करे। हमारा काम हम करें। देहाध्यास (देह-सम्बन्धी भ्रान्ति) छूटेगा तो ही हम साधन का, साधक-अवस्था का आनन्द पा सकेंगे। देह का लालन-पालन, भरण-पोषण, देख-भाल खूब की, अन्तत परिणाम देख लिया। इसका जो स्वभाव है, वही है न। सड़ना, गलना, विनष्ट होना। अब छोड़ो इसकी माथाकूट। अब आत्माराम की देखभाल करो। इसे अपने मार्ग पर जाने के लिए स्वतन्त्र कर दो। हम अपने गन्तव्य की ओर स्वतन्त्रता के साथ गमन करें।

आत्माराम स्वस्थ है

बीमार कौन ? बीमारी किसको ? आत्माराम को ? नहीं। आत्माराम तो निरोग है। इसे तो बीमारी से कुछ भी लेना-देना नहीं है। उसका स्वभाव ही बीमारी नहीं है, फिर हम बीमार कैसे ? शरीर को बीमारी आये, भले, आये, हमें क्या ? देह बीमार है, इससे हम परेशान क्यों ? देह से ममत्व है, अपनत्व है, मेरापन लगा है, इसलिए। जड़ की क्रिया को जड़ में मानो, निज में मत मानो। तुम तो बीमारी के ज्ञाता-दृष्टा हो, ज्ञाता-दृष्टा रहो, भोक्ता मत बनो।

अहंभाव : ढूंढ़ निकालो इसे

आदेश-निर्देश मे भी अहंभाव लगभग छिपा रहता है। जहाँ आदेश की अवज्ञा हुई, अवहेलना हुई नही कि उस अवज्ञा से आपको, सभी के मन को, सभी के अहंभाव को ठेस लगती है; चोट पहुँचती है, और उसी क्षण अन्तर में बैठा अहं का अजगर मुँह फाड़ कर फुँकारे मारने लगता है। होंठ फड़-फड़ाने लगते हैं। आवाज गूँजने लगती है। हृदय की धड़कन धौंकनी-सी ऊँची-नीची होने लगती है। आँखें लाल-भभक उठती है, शरीर धूजने लगता है, काँपने लगता है, थरथराने लगता है, कि मेरे आदेश की, मेरी आज्ञा की अवहेलना का साहस इसने किया तो किया कैसे ? ऐसा मुझे भी होता है; आपको, सबको प्राय होता है। मैं कहूँ, वैसा न करना, और मै मना करूँ, वैसा करना—इन दोनो ही प्रकारो से अहं को चोट लगती है।

कम्पन कम करो

जहाँ ऐसा लगे कि हमारे आदेश-निर्देश की अतीव आवश्यकता है, वहाँ भी अहंभाव-से-रहित आदेश दो। अहंभाव-रहित आदेश-निर्देश देने की अनिवार्यता कालान्तर मे अ-कषायी भाव को आमन्त्रित करती है। अ-कषायी भाव में या अल्पकषायी भाव मे आत्मकम्पन कम होगा। जब कम्पन कम होगा, तब बंध भी कम होगा।

भरपूर सावधानी

मुनिपद के योग्य प्रवृत्ति करते जाओ । मोह, क्रोध, मान आदि पर विजय प्राप्त करो । यह जीवन का सर्वोत्तम समय है इसे लोहा सग्रह करने में व्यर्थ न गँवाओ । पूरी सावधानी रखो । एक समय भी व्यर्थ के विकल्पों मे मत गँवाओ । वाहियात वातों का विचार यथाशीघ्र खत्म करो । ऐसे व्यर्थ के विचार जब भी आये, पूरी ताकत लगाकर उन्हें भगाओ । जमने मत दो । ये अविचार आत्मघाती शत्रु है । इनसे न इस भव का भला है, न अगले जन्म का हित है । ये दोनों ओर से मारते है । ये दो मुख वाले साँप है । इनसे वचो । ये पीछे से भी काट लेते है, आगे से भी डस लेते है । सतत् सावधानी ही इनसे वचा सकती हे ।

क्रोध का उत्तर क्षमा

गोशाल, संगमदेव और शूलपाणि यक्ष ने कितने भयंकर कष्ट दिये। चण्डकौशिक विषधर ने डसा। ग्वाले ने कानों में कीले ठोंक दिये; किन्तु उस क्षमा-सागर, समता-मूर्ति महावीर ने उफ़ तक नही की। वे घोरातिघोर उपसर्गों में, कष्टों मे, मेरु-जैसे अचल और कमल-जैसे निर्लिप्त रहे। अडिग आत्म-भाव मे ठहरे रहे। समताभाव की पराकाष्ठा थी फिर भी किंचित् मात्र एक रोम में भी आकुलता-व्याकुलता नही आयी। क्रोध के उत्तर मे क्रोध नही, क्षमा की अमृत-वर्षा हुई। कोटि-कोटि वन्दन है उन्हे नमन है उनके चरणों में वार-म्वार। हमे भी वही मार्ग पकड़ना है। यहाँ कुछ सफलता प्राप्त जरूर करना है; मार्ग पकड़ेगे तो देर-अवेर मजिल मिलेगी ही। सावधान रहना। क्रोध न करना।

ऐसा क्यों ?

अनुकूलता मे राग, प्रतिकूलता मे द्वेष, ऐसा क्यों ? अव ऐसा नही करना है। इस चेतन को अव समत्व की ओर मोड़ना है, ढालना है। राग-द्वेष की अनादि आदतो को वदलता है।

आत्मा का शत्रु

अनुकूलता मे खुशी न हो, प्रतिकूलता मे शोक न हो, खेद या पीडा न हो। स्वभाव को पूरी ताकत के साथ जमाना है। राग और द्वेष दोनों आत्मा के शत्रु हैं। अब इनकी सत्ता को हिलाना है। इनके आसन को उठाना है। देखना है ये हमे कैसे परेशान करते हैं? काम, क्रोध, तृष्णा सब के प्रति यही भाव अपनाना है। अब इनसे रुख नहीं मिलाना है।

अव्वल हम

आप कॉलेज में छात्रों की भर्ती करोगे तो कौन-सी कक्षा के छात्रों को लोगे ? पहली या दूसरी कक्षा के छात्रों को, या दसवी-ग्यारहवीं के छात्रों को ? कॉलेज के निकट कौन-से छात्र है ? दसवीं-ग्यारहवीं के न । बस वीतरागता प्राप्त करने के निकट मोक्ष पाने के निकट कौन आये हैं । हम ही न ? हमने "वीतराग" शब्द सुना है, पकड़ा है, किसी-किसी ने उसे समझा है, प्राप्त अवस्था का ज्ञान भी कुछ होने लगा है, इसलिए हम यही सोचकर चलें कि मोक्ष पाने वालों में हमारा नम्बर पहला है । फिर हममें से जिसका नम्बर लग जाए अच्छा है । पर लाइन में हम सभी है, धीरे; सुस्त; नम्बर आयेगा जरूर । हम यही मानकर चलें । अब तो वातावरण बदल गया है अन्यथा मुनिराजों के व्याख्यान तो जंगलों में होते थे, सार्वजनिक स्थानों मे होते थे । उनमें सब जाति के लोग आते थे । हिंसक जाति के भी आते थे, उनमें से कभी कुछ अहिंसक भी बन जाते थे । अब योग नहीं बनता । निमित्त बिना काम बनना कठिन होता है ।

ज्ञान मोक्ष का द्वार

सयम भाव देवों को भी दुर्लभ है । सब सुख प्राप्त होने पर भी सयम तो केवल मनुष्य जन्म की बपौती है । मानव-जन्म मे ही यह सुलभ है । ज्ञान के द्वारा ही मोक्ष तक पहुँचा जा सकता है । मोक्ष-तरु का बीज ज्ञान, दर्शन, चारित्र ही ह । इस रत्नत्रयी की आराधना मे अपना तन-मन, जीवन सवस्व लगा दो । इस मन मे, इस उत्तम मानव-जीवन मे यदि हमने मोक्ष-साधना नही की, तो समझ लो हमने पुण्य-योग से प्राप्त चिन्तामणि को व्यर्थ ही खो दिया, अत सावधानी के साथ, सतर्कता से रहकर आत्मसाधना मे लग जाना है अब राँडी-रोवण (हायतोबा) करने का समय हे कहाँ ? अब तो त्वरा जगाओ, शीघ्रातिशीघ्र स्व-स्थान पर जाना हे स्वतन्त्र धाम पर पहुँचना हे । जब साधना मे गति भरोगे, तभी प्रगति होगी । अब अवगति तो करनी ही नहीं है । ऐसा निश्चय तो आज से ही कर लेना है । जागो-जागो, समय तीव्रता से चला जा रहा है । रोना छोडो । वीर बनो, महावीर की सतान हो । महावीर के सिपाही हो । सिपाही और कायर मे कोई मेल नहीं है । सिपाही से सैनिक बनना है और सैनिक से सेनापति । आन्तरिक दुश्मनों को मारना है उन्हें खत्म करना है ।

पुरुषार्थ जगाओ

स्वय का विकास अपने हाथों में है, स्वाधीन है। अन्य का विकास हमारे हाथ में नहीं है। तीर्थंकर जैसे शक्ति-सम्पन्न साधनावान भी जो उपदेश देते थे, सब के लिए देते थे। उनका कोई तेरा-मेरा, अपना-पराया, सामान्य-विशेष नही था। फिर भी जिन्होने उपदेश ग्रहण किया वे तिर गये। नही किया, वे रह गये। आखिर अपना पुरुषार्थ ही अपने काम आता है, अन्य का पुरुषार्थ आत्म-विकास मे काम नही आता। पुरुषार्थ जागृत करो। उम्र घट रही है। समय नजदीक आ रहा है। गाड़ी छूट चुकी है। सिग्नल गिर चुका है।

वह हमारे पास कब पहुँच जाए, कुछ पता नही, अतः तैयारी करो, तैयार रहो, जाना है, निश्चित जाना है। कोई बहाना चलने वाला नहीं है। गाडी मे बैठना ही पड़ेगा। कम-से-कम चार घण्टे जप तथा चार घण्टे तो स्वाध्याय में देना ही चाहिये। चौबीस घण्टों में से आठ घण्टे तो अपने लिए निकालना ही चाहिये। निर्णय करो, नियम ले लो। आज्ञा-पालन ही सेवा है। चमड़े से दूर रहो। आत्मा के नजदीक बनो अन्त में आ जाओ। मैं तो निश्चिन्त बनने के प्रयत्न में हूँ। तुम भी निश्चिन्त बनो।

कम-से-कम शुभ को तो पकड़ें

भगवान महावीर के जीव ने जब अशुभ का सग्रह बढाया तब वह नीचे सातवे नरक गया । क्या राज ऋद्धि किसी को मिलती नही ? क्या महावीर को ही वह मिली थी ? छह खडो का अधिपति यदि सत्ता को, सुख-ऐश्वर्य को पचा सकता है, तो तीन खडों का अधिपति उसे क्यो नहीं पचा सकता ? पर नही पचा पाये । प्राप्त परिस्थिति मे सत्ता का मद चढ गया । वे अहकार मे चूर-चूर हो गये । उन्मत्त बन गये । सत्ता के नशे के बारे मे अहम् आया, अहम् के साथ "क्रोध साहब" पधार गये । जहाँ क्रोध और मान पहरेदार बनकर बैठे हों वहाँ आत्मारामजी का धन लुटेरे मौज से, आनन्द से निभय होकर लूटेगे ही । उनके चगुल मे आने के बाद आत्मारामजी सहजता से थोडे ही निकल सकेंगे । गये पुन नीचे उसी स्थिति मे, चार गति म, अत प्राप्त शक्तियों का समय शुभ मे ज्यादा-से-ज्यादा लगे इसकी सावधानी सब को रखनी चाहिये । यदि शुद्ध मे जाने का पथ और पात्रता हमारी अभी नहीं है, तो कम-से-कम शुभ को तो पकड कर चलें ।

घृणा : पापी से नहीं, पाप से

पापियों से कभी घृणा नहीं करना, किन्तु पाप-प्रवृत्ति में अपनी हिस्सेदारी कभी नही रखना। यदि पाप प्रवृत्ति में भागीदारी डालोगे तो उसके प्राप्त फल मे भागीदारी रहेगी। यदि आपने पार्टनरशिप मे कम्पनी की भागीदारी स्वीकारी है, तो लाभ-हानि मे भी भागीदारी लेनी पड़ेगी। सत् प्रवत्तियों मे सदा भागीदारी डालना असत् से सदा वच निकलना। शुभ काम मे साथ देना, अशुभ मे विरक्त रहना।

क्या आप ठीक है ?

धीरे-धीरे यही गलती, परम्परा वन जाएगी, फिर "हमारी तो परम्परा ही ऐसी है" "दादा जी ऐसा ही करते है", "वाद मे पिताजी भी करने लगे", "इसलिए हम भी करते है"। आप अपने पारिवारिक आदर्शों के आईना है। यदि आप ठीक हैं, तो परिवार ठीक होगा, अतः आपको अपने आचार-विचार मे पूरा विवेक रखना चाहिये। जागरूक रहना चाहिये। ऐसा काम कभी नही करना चाहिये कि आपकी कमजोरी आपके परिवार के लिए आदर्श वन जाए। यदि आप नही करेंगे तो मरते दम भी आपमे यह कहने का साहस वना रहेगा; कि देखो ! यह काम मैने कभी नही किया, तुम भी मत करना।

महावीर का मार्ग

आप भी सोचें, मैं भी सोचूँ कि यह सारा जगत् नाशवान है। सारा परिचय टूटने वाला है। परिवार, परिजन, सब छूटने वाले हैं। नाते-रिश्ते यदि यहां निभ जाएँ तो बहुत है वर्ना वे भी टूटने वाले हैं। सारा संसार, जो इन चर्म-चक्षुओं से दिखाई पड़ता है, नष्ट होने वाला है। महावीर का मार्ग, महावीर की वाणी इसी ओर इंगित करती है। वह इशारा करती है, दिशा-बोध देती है। महावीर ने सत्य को समझाने का, सामने रखने का सार्थक प्रयत्न किया है। उसे समझाने का खूब प्रयत्न किया है, कुछ भी उठा नहीं रखा है।

क्या कहें इसे, नित्य या अनित्य ?

शरीर अनित्य है, इसके संबंध में आने वाले सब अनित्य हैं। सामने ही, देखते-देखते अनेकों के शरीरों को हम लाशों के रूप में श्मशान में राख का ढेर बनाकर आते हैं। अब इसे अनित्य कहना या नित्य ? क्या कहना ? जिसका नाश होता है, उसे हम शाश्वत कैसे कह सकते हैं ? यदि यह शाश्वत नहीं है, तो फिर इससे राग क्यों है ? मेरा-मेरा क्यों ?

दीनता नहीं, उल्लास

यदि आहार संज्ञा कम करनी है, तो इसी शरीर में होगी। छोटे-से-छोटे तप नवकारसी (सूर्योदय के पश्चात् दो घड़ी तक कुछ भी खाना पीना नहीं), पोरसी यानी एक पहर तक कुछ न खाना। धारणा-पूर्वक नियम-पूर्वक भूखे रहना तप है। उस समय यदि कोई कहे खाओ तो क्या कहते हो नहीं साहब मेरे आज पोरसी का पच्चखाण का नियम है, मैं अभी तीन घण्टे कुछ नही लूँगा। इन शब्दों में मन का उल्लास भाव है, दीनता नही है, गर्व है, गौरव है। मेरे आज पोरसी है। कभी काम में फँस गये और चार घण्टे नही खा पी सके तो अरे ऐसा फँसा कि खाने का समय ही नहीं मिला। वड़ी जोर की भूख लग रही थी, पर क्या करता, विवशता थी। कैसे खाता? काम जो वाकी था, आज ही, अभी ही पूरा करना था। इसमें क्या है, गौरव नही, विवशता है, दीनता है। खेद है, संकल्प पूर्वक ही भूखे रहना तप है। "नहीं साव, मुझे नही खाना है मेरे नियम है"—इसमें गौरव है, आत्म सन्तोष है। "मेरे आज तप है" मन में प्रसन्नता है, इसमे विवशता या दीनता नहीं है।

बाहर से कुछ भी नहीं

हमारा धन हमारे पास है, बाहर से कुछ भी लाना नहीं है, बाहर में जप, तप, संयम या नियम आदि सब पहली भूमिका में योग्यता प्राप्त करने के लिए करना है। बाद में तो सब काम भावश्रेणी ही करेगी। छठे गुणस्थान तक साधन की जरूरत है। साधन लेना पड़ेगा। छठे तक यदि साधनों को, निमित्तों को हमने नकारा तो सब प्राप्त सामग्रियाँ निष्फल हो जाएँगी। छठे के पश्चात् अप्रमत्त में भावश्रेणी काम करती है, जहाँ जिसकी आवश्यकता है, वहाँ वह लेना है। श्रेणी में जैसे बैठे हो, बैठे हो, बैठे रहोगे, केवल भाव ही काम आयेगा।

सातवाँ गुणस्थान तो भावों में ही आयेगा, प्रचार कार्य तो छठे में ही बनता है। देखना, जानना, बोलना, उपदेश देना एवं प्रवृत्तियाँ छठे तक है।

माला-ध्यान छठा। भाव आये वहाँ सातवाँ। हाथ में माला है, पर शब्दों के भावों में लीनता आ गई, माला सध गई, भाव-जागृति आ गई यह छठा-सातवाँ। जब भावश्रेणी रुक जाती है, तब छठा, भावश्रेणी में रहे तब सातवाँ।

निर्णय कर लो

यह घर आपका है, तिजोरी आपकी है, यह सारा परिवार आपका है ? ये मित्र, स्नेही आपके हैं, ये नौकर-चाकर आपके है, ऐसा है; तो फिर इन्हे छोड़कर मत जाना, या इन्हे जाने मत देना। अपनी आज्ञा मे रखना। इच्छा पर नचाना। यदि ऐसा मानते हो कि सव छोड़-कर जाना पड़ेगा तो फिर इन सव को अपना मत मानो। यह भयकर भूल क्यो कर रहे हो ? एक निर्णय कर लो कि जो हमारा है, उसे छोडकर नही जाने दूंगा और यदि हमारा नही है तो आज से हमारा मानने की भूल को छोड़ता हूँ। इसका अर्थ यह नही कि आप मकान मे न रहें या दूकान मे न जाएँ; तिजोरी न खोलें, परिवार से अवोले रहे। सव मे रहकर भी इस सत्य को सदैव सामने रखे कि ये मेरे नही है। कपड़े भी पहनोगे, दवा भी लोगे। शरीर-रक्षा भी करोगे पर मन में ऐसा समझकर करो कि "सव कुछ है, पर मेरा अपना कुछ नही।" जव तक संयोग-संवंध है, तव तक है, जव संयोग-संबध टूटेगा तो ये अपने रास्ते पर होंगे, और मैं अपने मार्ग पर रहूँगा।

ससार में हूँ भी, नहीं भी हूँ

नारियल का पानी सूखने पर भी नारियल का गोला वैसा ही रहेगा, पर पानी सूखने के बाद नारियल कांचली मे रहने पर भी कांचली से सलग्न नहीं रहता, कांचली को तोडने पर गोला सही-सलामत अखण्ड बाहर चला आता है। क्यों आया बाहर ? पानी सूख गया था, वह पानी जो गोले को कांचली मे चिपकाये हुए था। वह पानी जब सूख गया तब गोला अलग हो गया। अलग हो गया तो कांचली के साथ सबध ही न रहा, ऐसे मे वह टूटेगा कैसे ? नारियल मे रहकर भी जैसे गोला नारियल मे अलग है, वैसे ही हम भी ससार मे रहकर ससार से भिन्नत्व की शिक्षा अपने जीवन मे उतारे।

पानी सूख गया यानी लगाव खत्म। मूर्च्छा टूट जाए। यदि मेरे मन की लालसा मिट जाए तो आत्मा अलग और शरीर अलग है। भला आत्मा का शरीर से क्या लेना-देना ? भले टूटे-फूटे, मरे-खपे, मेरा इसमे क्या नुकसान है ?

शरीर कांचली है, नारियल है, आत्माराम गोला है। जब तक मोह का पानी है—शरीर के साथ जन्मेगा, बूढा होगा, जवान-बालक होगा, सुखी-दु खी होगा। ज्यों अज्ञान का जल सूखा, त्यों आत्मा और शरीर के भिन्नत्व का बोध—हुआ। यही भिन्नत्व सारे दु खों की दवा है।

कुत्ते बढ़ गये हैं

घर में यदि कुत्ता आ जाए तो उसे कौन बैठने देता है ? जब तक किसी को यह पता न चले कि घर में, चौके में कुत्ता आ गया है, तब तक कुत्ता चप-चपाचप भोजन-सामग्री खाता है; किन्तु जैसे ही मालूम हुआ कि कुत्ता गया है चौके में, तो वह वहाँ लकड़ी लेकर उसके पीछे पड़ जाता है—इतना कि निकाले बिना चैन से नही बैठता। यदि कुत्ता खा रहा है और आपको मालूम हो गया है कि वह खीर खा रहा है, इतने पर भी उसे निकालेंगे नहीं तो आपकी गिनती महामूर्खों मे होगी। आजकल तो कुत्तो को पाला जाता है। हमारी अज्ञान दशा के कारण ही ये कुत्ते बढ़ गये हैं, इनका साहस बढ़ गया है, इनकी हिम्मत भी बढ़ गयी है। अब जब हमें पता लग गया कि घर में कुत्ते है और हमारा आत्मधन चाट रहे है, तब इन्हें निकालना ही है। क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या, डाह, निन्दा आदि ऐसे न जाने कितने कुत्ते घर में घुस आये है। इनके पीछे लकड़ी लेकर पड़ जाना है। दोषों को पीटो, खदेड़ो। इन कुत्तों से अपने घर को मुक्त कर लेना ही सब दु:खो से मुक्ति का अचूक उपाय है।

समिति यानी सविवेक संयम

समिति यानी जो सीमित रहे। इन्हें धारण करते हैं आने-जाने में, पांव रखने में, वनस्पति पर पांव न पड़ जाए, बीजों पर पांव न पड़े, इसका विवेक रखते हैं, क्योंकि यह सचित्त है, जीवन-सहित है, प्राणवान् है। हम किसी प्राणी के घातक न बन जाएं, इसका ज्यादा-से-ज्यादा विवेक रखना — समितियों का परिपालन है।

गृहस्थ सम्पूर्ण समितिधारी नहीं बन सकता। वह पर्व-तिथियों में, पर्व के दिनों में पौषध करके एक, दो, चार, आठ दिन के लिए अहिंसावादी बन पाता है।

सामायिक : इन्द्रिय-जय : मौन

सामायिक में, पौषध में जितना समय जाता है, वह सारा सार्थक है, सफल है; शेष सारा समय जो अविरति में जाता है, संसार बढ़ाने वाला है।

भाषा भी सत्य बोलो, विवेक-पूर्वक बोलो, नम्रता से बोलो, हितकारी बोलो, उसका कम-से-कम प्रयोग करो। हमारी भाषा से किसी भी प्राणी के मन को चोट न लगे, ठेस न लगे। कोई पीड़ित न हो, ऐसा विवेक रखकर ही वाणी निकालो। प्रलाप की भाषा मत बोलो। गया सो गया, आगे की बात समझो, अब यही सम्यक् भाषा बोलना।

भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन न हो, इसका भी ध्यान रखकर बोलो।

आहार गवेषणा में ध्यान रखो कि यदि हमारे निमित्त, हमारे लिए, जीवों की घात हुई है; तो ऐसा आहार हमें लेना नहीं है।

सोमसुन्दरसूरि को मार्ग में साँप ने काट लिया। तीव्र जहर के प्रभाव से वे बेहोश हो गये। जंगल का मार्ग था। एक किसान उधर से निकला, उसने देखा और एक वनस्पति तोड़कर पत्थर पर पीसकर साँप के डंक पर उसने लगा

दी। दवा ने जहर चूस लिया। आचार्य होश में आ गये। ठीक होने का कारण जानकर उन महान् आचार्य को बड़ी वेदना हुई। अरे, मेरे निमित्त वनस्पतिकाय की हिंसा हुई। प्रायश्चित्त में जीवन-पर्यन्त छह विगई का त्याग कर आये। ऐसे महासाधक ! हमारे शासन की बहुमूल्य धरोहर हैं, वे धन्य हैं। हम जैसे निबल मनोबल वाले मुनियों के लिए प्रेरक हैं। क्या करें, सोचते तो बहुत है, पर अमल में लाने के समय मनोबल काम नहीं करता, शिथिलता आ ही जाती है, कहीं-न-कहीं में।

गवेषणा के समय यदि छः काय की हिंसा का ध्यान न रखें तो, साधु हिंसा का भागीदार बनता है।

मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति तीनों को कन्ट्रोल में यानी नियन्त्रण में रखना, मन को वश में रखना, वचन को मौन रखना, काया को स्थिर (अ-चचल) रखना अर्थात् इन्द्रियों को जीतना, मौन रखना, काया को सुस्थिर रखना।

दोष : बीनते चलो, फेंकते चलो

शरीर संयम-साधना में निमित्त है, इस दृष्टि से शरीर की रक्षा करना उचित है। शरीर-भाव से शरीर की चिन्ता साल-सँभाल मिथ्यात्व है। ठीक नहीं है। खूब स्वाध्याय करो, मनन करो, चिन्तन करो, ग्रहण करो, आत्म-कल्याण का सरलतम मार्ग यही है। खोज-खोजकर चुन-चुनकर आत्मा में मिले इन दुर्गुण-कंकरों को फेंको। जैसे गेहूँ में-से कंकर बीन-बीनकर फेंकते हैं न वैसे ही; निकाल बाहर करते जाओ, करते जाओ। एक दिन आत्मा स्वच्छ-साफ हो जाएगी। ऐसे दुर्लभ संयोग फिर नहीं मिलने वाले हैं। पुण्य-योग से परिपूर्ण नीरोग शरीर, उच्च कुल सब प्रकार की सामग्री, थोड़ी बहुत समझ भी पायी है। समय और साधन भी अनुकूल है। जैसा चाहो, वैसा करने की सुविधा भी है। प्रमाद को त्याग कर आत्मभाव बढ़ाओ, जिससे इस अनादिकालीन जेल से, कारागार से छुट्टी मिल सके। शेर कितना ही बलवान हो पर पिंजरे में बँधा शेर तो परतंत्र ही है। पिंजरे में कभी सुख नहीं मिलता। शक्तिशाली आत्मा कर्मतंत्र के अधीन परतंत्र है। इसे मुक्त करना है। इसी भव में कम-से-कम इसके बंधन शिथिल जरूर

करता है। मुझसे तो निराश दुनियादारी से कुछ नहीं बनता। खेद जरूर है, पर नाउम्मीद नहीं है। दुनियादारी में रस है। इस रस से मुझे बिना दुनियादारी के विचार कठिन है। पर करना है, जरूर करना है इसी भव में। जिस दिन पूरा खेद होगा, उसी दिन छुटकारा होगा। खेद भी पैदा करना है।

तैयारी में लगो

एक भी समाधि-मरण अनन्त जन्मों की असमाधि की जंजीरों को तोड़ने में समर्थ है। समाधि-मरण भी क्वचित् भाग्यशाली आत्माओं को ही प्राप्त होता है। हम सबको भी समाधि-मरण की तैयारी में लग जाना है, समाधि-भाव ग्रहण करना है।

धूल छानने जैसा व्यर्थ श्रम

शरीर-रक्षा के साथ-साथ सयम-रक्षा और आत्म-रक्षा के प्रयास मे भी सतत् जाग्रत रहना चाहिये। "वीर-वीर" का जाप सतत् बना रहे, ऐसा अभ्यास डालना चाहिये। सयम-धन किसी पूर्व पुण्य से मिला है। सावधानी से इसकी रक्षा करो। खूब सदुपयोग करो। जीवन बडी तीव्र गति से जा रहा है। रोकने से एक क्षण भी रुकने वाला नहीं हैं। अब तक हम कुछ भी नहीं कर पाये हैं, पर अब करना है ऐसा दृढ सकल्प करके स्वाध्याय, ध्यान, जप, तप, चिन्तन, मनन आदि सत्प्रवृत्तियों द्वारा अभ्यन्तर विकास मे लगना है। बाहरी विकास से कुछ भी आनी-जानी नहीं है। केवल धूल छानने जैसा व्यर्थ श्रम है। स्व-उपयोग म प्रवेश करना है। कपाय भावों को कमजोर करना है। हम, तुम, सबको ही करना है। ऐसा किये विना ससार-परिभ्रमण, जन्म-मरण, सयोग-वियोग मिटने वाला नही है। ससार की जड कपाय है, इसे सदा याद रखना है।

घबरायें क्यों ?

जो अज्ञान भाव मे कर्ज किया है, उसे आज ज्ञान-भाव से हम ही चुकायेगे – ऐसा संकल्प दृढ़ता के साथ करना है। घबराने की क्या बात है ? शरीर तो वेदनीय का घर ही है, इसमे परेशानी क्यों ? हमारी परेशानी से कुछ भी परिवर्तन होने वाला नही है। वंध का कचरा व्यर्थ में और भर जाएगा, अत· निश्चित रहो। मजबूत बनो। महावीर के वचनो का मनन करो। एक यही मार्ग है।

चाहिये, सत्ता के साथ विवेक

लक्ष्मीजी आये और चमकारा न करे, ऐसा कैसे हो ? और लक्ष्मीजी के चमकारे मे गर्दन न अकड़े और आँखे न चुधियाएँ, यह भी कैसे हो ?

जिनकी आँखें लक्ष्मीजी की चकाचौंध मे चुँधियाती नहीं है, वे जीव भाग्यशाली गिने जाते है।

सत्ता के साथ सत्ता का मद न आये, यह कम सभव है। वह तो आयेगा ही। सत्ता व्यक्ति को अन्धा बना देती है। सत्ता के साथ इन्सानियत भी आये ऐसा कदाचित् ही बनता है। सत्ता ने आपको क्या, हम मुनियो को भी अन्धा बनाने मे कोई कसर नहीं छोडी है। हम लोग भी सत्ता के मद मे कभी-कभी इतने अविवेक और विकल हो जाते है कि हमारे कृत्यों का असर पूरा समाज सदियों तक ढोता है। सत्ता का नशा शराब दारू, अफीम-भाँग के नशे से भी अधिक खराब नशा है। यह ऐसा नशा है जो आपका या आपके परिवार का विनाश करता है, जब कि सत्ता का नशा, धर्म का नशा, समाज और राष्ट्र के पतन

का कारण बनकर सदियों तक देश को, राष्ट्र को शान्ति की साँस नहीं लेने देता।

समझदार को सत्ता पाकर कभी भी विवेक का पल्ला नहीं छोड़ना चाहिये। विवेक-कमी पतन की पहली सीढ़ी है, पतन की पहली सीढी यानी वहाँ से फिसला कि गया नीचे। भाग्य का जोर होगा तो बीच में किसी के सहारे रुक जाएगा वर्ना आँगन ही चाटेगा।

कषाय : कर्म



अकिंचन बनें

हमें बाहर से तो अपरिग्रही बनना ही है, पर भीतर के समस्त कर्म-परिग्रह से भी रिक्त होना है। अकिंचन बनना है।

चुकाना तो है ही

उदयगत कर्म के कर्ज को शान्ति और समता के भाव से चुकाना है। जो लिया है, दूसरों का माल हजम किया है, उसे तो चुकाना ही पड़ेगा। इस विचार को विचार मे नही, आचरण में प्रत्यक्ष प्रमाणित कर दिखाना है।

भोगने में समझदारी

वेदनीय का उदय भोगे बिना छुटकारा नही। वेदनीय भोगी ही जाती है, टाली नही जा सकती। क्या करे मन यदि स्थिर न रह सके तो उपचार करो, और क्या करें? कुछ भी वश मे न हो तो शान्ति से भोगने मे ही समझदारी है।

नमस्कार उन्हें

राग-द्वेष और अज्ञान-भाव ही संसार-वर्द्धक है। धन्य हैं वे नरपुंगव जो इन संसारवर्धक कारणों को आत्मभावों से निकालने में सतत् प्रयत्नशील है। उन्हे वारम्बार वन्दन है, नमस्कार है। भगीरथ पुरुषार्थ यही माँगता है। हम निर्जरा न कर पायें तो कोई वात नही, पर नया संग्रह, नया वंध न हो इसकी तो पूरी-पूरी सावधानी रखे।

कभी-न-कभी

ऐसा स्वर्ण समय, स्वर्ण संयोग फिर मिलना कठिन है। कर्मतंत्र को शिथिल करने के लिए, यह समय वड़ा ही उपयुक्त है; किन्तु हम तो कर्म-तंत्र को और मजवूत वनाने मे लगे है। यह स्थिति भारी खेदजनक है। कभी-न-कभी तो पुरुपार्थ की दिशा वदलेगी। लकड़ी लेकर पीछे पड़ेगे तो ये कर्म-भेड़िये कव तक टिके रहेंगे? खदेड़ते जाओ, खदेड़ोगे तो आखिर भागेगे ही।

वध में सावधान रहो

यह जीवन जाने कहाँ, कौन-कौन से भव मे कौन-कौन से कर्म बांध लेता है ? कर्म बांधते समय पता नहीं चलता, पर जव वे उदय में आते हैं, तव रोता है, चिल्लाता है, कराहता है। भाई, अव रोने से क्या होने वाला है ? अव तो भोगने में ही छुटकारा है। आगे नये कर्म न वधे, इसकी सावधानी रखोगे तो ऐसे कर्म उदय में नहीं आयेंगे, वर्ना यह चक्कर तो चालू ही रहने ही वाला है। विना वध-भाव मे वचे कष्टो से मुक्ति नही है, तीन काल में नही है। वध मे सावधान वनो।

उदय में समभाव

कर्म-वध करते समय पता नहीं चलता, उदय आने पर पता चलता है। कर्म-वध से वचना है, अन्यथा कष्टों से छुटकारा नहीं। भटकना ही पडेगा। तुम लोग खव सहनशील रहना। क्रोध-आक्रोश से वचते रहना। उदय तो भोगना ही पडता है। "उदय-मे-समभाव" "वध-मे-साव-धान"—ये दो मन्त्र-वाक्य एक-से-एक वढकर है। इन्हें याद रखना।

गणित : मंदता-तीव्रता का

वेदनीय कर्म के उदय मे समभाव से वेदन करे तो वंध तो होता है; किन्तु अल्प होता है। उसका रस, प्रदेश सभी अल्प मंद पड़ते है। यदि कषाय भाव/मोह भाव साथ में रहे तो वंध तीव्र होता है। रस भी तीव्र, प्रदेश भी तीव्र। जितनी-जितनी हमारे भावों की तीव्रता-मंदता रहेगी, उतने-उतने अंशो मे कर्म-वंध की तीव्रता-मंदता चलेगी।

घबराओ नहीं

आसाता के वीज डाले है, तो पौधा आसाता का ही लगेगा। अव रोने, टसकने और कराहने से क्या होगा? वंधन के समय सावधान रहना था, सतर्कता रखनी थी। अव घवराओ नहीं। दीन मत वनो। समभाव में रहो। ज्ञाता-दृष्टा वनकर रहो। शरीर के साथ रहकर जो-जो कर्म वाँधे हैं, वे सव शरीर के साथ रहकर ही चुकाने और भोगने होगे।

अपनी खबर लो

जव वुद्धि-जन्य बोध आत्मा में स्थिर हो जाता है, तव प्रज्ञा स्थिर होती है। प्रज्ञा की हलचल मिट जाने पर शाश्वत सुख प्रकट होता है, अतः भीतर की हलचल मिटा लो, क्योंकि वाहर की हलचल कर्माधीन है, भीतर की स्वाधीन। भीतर की हलचल मिटाकर अपने-आप की खवर लो।

फर्क है

एक सौंठ ऐसी होती है, जिसके मुँह मे रखते ही चरचराहट होने लगती है। वह झाल-झाल लगा देती है। एक कम काम करती है। क्यों ? प्रकृति मे, रस मे मदता है। फर्क है। समता मे भोगने वाले के मन्द और विषमता से भोगने वाले के तीव्र बध पडता है। सातवे गुणस्थान के बाद अल्पतम बध की व्यवस्था है, इसके पहले नहीं।

घर मेरा है

यदि अहभाव रखना ही है तो कर्मों के सामने रखो। भाई ! अब पधारो, हमारे यहाँ अब आपका कोई काम नहीं है। अन्दर से विग्रह, विद्रोह पैदा करो। अब ये मेरे घर मे आ ही नहीं सकते, जब भी आयेंगे, इन्हे मार भगाना है

सफलता का मर्म

कषाय भावों ने किसे नही गिराया है? सबको गिराया है; किन्तु हमें मजबूत रहना है। जैसे कषाय आये, वैसे उसे समभाव की लकड़ी से खदेड़ देना है। एक पल भी ठहरने नही देना है। आया नही कि मार भगाया। इसी मे सफलता और जीवन की उन्नति का मार्ग सन्निहित है। कषाय तो पतन का कारण है ही। धन्य हैं वे जिन्होने कषायो पर विजय ही प्राप्त नही की, वरन् उन्हें सर्वथा खत्म कर दिया, नष्ट कर दिया। ये ही कषाय-विजयी कषाय-हंता बनकर अरिहंत बन गये।

कुछ पता नहीं है

आत्म-विकास करे। कषाय भावों पर विजय प्राप्त करे। कषाय न करे। कषाय आत्मघात करता है। संयम का घात करता है, दुर्गति मे ले जाता है। मुनिधर्म की शान है, कषाय-विजय। उपशम-भाव को ही भगवान ने श्रमणत्व का सार कहा है। जो उपशमित होते रहे उनकी आराधना ही आराधना है, उपशम-भाव के विना आराधना विराधना के खाते मे चली जाती है। सावधान रहना है। प्रतिपल जागृत रहना है। काल सिर पर मँडरा रहा है। आजकल की तैयारी है। कब ले उडेगा ? कुछ पता नहीं है, अत सतर्कता के साथ शीघ्रता अनिवार्य है।

कानून कानून है

यदि हमने प्राप्त परिस्थितियों को बन्ध का कारण बनाया, क्रोध का कारण बनाया, अहं का कारण बनाया, अविरति का कारण बनाया तो हम जो मंजिल तय करके आये हैं, उस पर वापस लौट सकते हैं। वीतराग मार्ग में किसी की कोई तरफदारी नहीं है, कोई लुकाव-छुपाव नहीं है। जो है, स्पष्ट है, भले मैं हूँ, चाहे आप हैं, कानून-कानून है। यहाँ मुलाहिज़ा किसी का नहीं है। जो जहर खाएगा, वह मरेगा; फिर साधु खाये, या गृहस्थ, मरना तो उसे पड़ेगा ही।

जैसा बोओ, वैसा काटो

आंशिक कार्य यदि नहीं हुआ है, तो पूरा कार्य भी कभी नहीं होगा। एक तन्तु की बुनाई को यदि कपड़ा न माने तो फिर कपड़ा किसे मानेंगे? अरिहन्त का भावनिक्षेप अरिहन्त में स्वयं में है, वे किसी को तारें तो फिर जगत् के किसी भी प्राणी को वे डूबने नहीं देंगे। ऐसी उनकी शक्ति है, करुणा है; पर ऐसा होना संभव नहीं है। अपने-अपने कर्मानुसार प्राप्त फल को अरिहन्त रोक नहीं सकते। जैनधर्म में सारी व्यवस्था स्वाधीन है। जैसा बोओ, वैसा लो।

अविचल बनें

योगों की चचलता ही कर्मबंध का कारण है। प्रधान निमित्त है। योग दो प्रकार के हैं, कपाय-सहित, कपाय-रहित। कपाय-सहित योग कर्मबंध का कारण हैं। कपाय-रहित योगों से कर्म का आस्रव नहीं होता। कपाय-रहित योग की व्यवस्था आत्म-विकास का कारण है। कपाय-सहित योग की व्यवस्था आत्म-पतन का कारण है।

दोष मेरा है

व्याधि जो भी आती है, कर्मजन्य होती है। जिसमें ये बड़ी-बड़ी व्याधियाँ तो निश्चित ही कर्मजन्य होती है। जैसे मेरी यह व्याधि कौन-सी ? कैंसर की। मेरे आहार, विहार, जीवन सब व्यवस्थित होने पर भी यह व्याधि आ गयी। इसे क्या मानेंगे ? कर्मजन्य ही मानेंगे। इसमें बाहरी कुछ भी निमित्त नहीं है। कभी कहीं कर्मों को निमन्त्रण भेजा था, वे आ गये। भला, इनका इसमें क्या दोष ? दोष मेरा है। मैंने इन्हें बुलाया है। बिना बुलाये तो ये आये नहीं है ?

क्यों न्योतते हैं इन्हें ?

कर्म स्वतन्त्रता से अपने-आप नहीं आते। हम उन्हे जब निमन्त्रण भेजकर आमन्त्रित करते हैं, तभी वे आते हैं, आने के पश्चात् तो वे जैसा उनका स्वभाव है, वैसा परिचय वे देंगे। आपको यदि इनकी आदते नापसन्द हैं, तो अब आगे उन्हे आमन्त्रित मत करना, ये नही आयेंगे, किन्तु अभी तो भूल का परिणाम भोगना ही होगा।

कर्म : आयें ही क्यों ?

"कर्म कैसे आये, कैसे लगे, क्या हुआ" इस माथाकूट से कोई लाभ नहीं है। अब आगे कर्म न लगे, इसे जानना है, समझना है, प्रयास करना-कराना है, और सतत् जागरूक रहना है। कर्म के सामने किसी की कुछ भी जोर-जबरदस्ती नहीं चलती है। उन्हे तो भोगना ही पड़ता है; पर कर्म आयें नहीं, इसकी सावधानी हम बराबर रख सकते हैं। अपने चौकीदार स्वयं बने।

इसे सार्थक करें

इस जन्म में हमें विवेक की कला मिली है। सच मे, यदि हम इसे सार्थक करें, तो एक क्षण में ही राग-द्वेष नष्ट हो जाएँ।

राग है मूल

कर्मों की जड़ राग है। मूल राग है। यदि राग खत्म हो जाए तो कर्म स्वतः खत्म हो जाएँगे। राग से ही कर्म बँधते हैं, राग टूट जाए तो कर्म भी छूट जाएँ।

मार्ग कर्म-क्षय का

उदय में आये कर्मों को समभाव से सहना सीखें, जिससे नये कर्मों का बंध न हो पुराना कचरा साफ होता जाए। इस तरह एक दिन ऐसा आ जाएगा कि हम कर्मों से सर्वथा मुक्त होकर अजर-अमर, अविनाशी पद को प्राप्त करने में समर्थ बन जाएँगे। कहना नहीं, सहना सीखो। भगवान् महावीर ने कितने भीषण उपसर्ग कैसे समभाव से सहन किये थे? हम भी तो उन्हीं की संतान हैं, फिर इतनी कायरता क्यों? देह जाएगी तो जाएगी, भले जाए, एक दिन जाने वाली ही है। अमर देह तो तीर्थंकरों को भी नहीं मिली। वीर बनो, महावीर बनो। कायरता का त्याग करो। क्या होगा, क्या नहीं होगा, इन गरीबदासी भावों को मन से निकाल बाहर करो। वीर की संतान और इतनी दीन!!

हँसना क्या : रोना क्या

वीमारी (कर्मजन्य व्याधि) में, शान्त रहो। सोचो, चेतन चिदानन्द को व्याधि कैसी? भूल-भूल में इन भावों को घर में डाल लिया। इनका तो स्वभाव है कि ये जाते हुए लात मारकर जाते हैं। कर्मों का स्वरूप ही ऐसा है, कैसा? अशुभ कर्म लात मारकर रुला जाते हैं, शुभकर्म सहला-कर हँसा जाते हैं; किन्तु हम दोनों स्थितियों में मध्यस्थ वने रहे। न अशुभ के परिणाम मे दिलगीर वने, न शुभ के प्रतिफल में दीवाने वनें। दोनों को अपने कब्जे मे रखो। ये तो कर्मों के नजारे है। दोनों ही टिकने वाले नहीं है, फिर क्या हँसना और क्या रोना? सब ठीक है।

मुक्ति का प्रथम सोपान क्षमा-प्रधान गुण उपशम है। अभी हम सब शान्त बैठे हैं। किसी को भी क्रोध नही आ रहा है; किन्तु अभी कोई शब्द डाल दे, फिर देखो मजा जैसे किसी ने शान्त तालाव में पत्थर फेंक दिया हो। एक प्रतिकूल शब्द मिला, प्रतिकूल कार्य हुआ कि वस शान्त मन के सागर में उथल-पुथल मची; लहरों पर लहरें, तरंगों पर तरंगें। अन्तर में तूफान मच जाता है। पानी का स्वभाव स्थिर

रहना है, क्योंकि वह स्थावर है, किन्तु हवाएँ, बाहरी निमित्त उसे चचल बना देते हैं। वैसे ही आत्मा का स्वगुण शान्ति है, अचचलता, अकपना है, किन्तु कषायों की आँधी योगों को चचल बना देती है, और जहाँ कम्पन आया कि कर्म तैयार हुए। ये तो कम्पन की राह मे ही बैठे है। हम हिंसापूर्ण कार्यों में आदेश, उपदेश, निर्देश, सदेश आदि से बचे। उनसे यथासम्भव बचने का, अलग रहने का प्रयत्न करना चाहिये। घर मे, परिवार मे, समाज मे, राष्ट्र मे, कहीं भी आरम्भ-समारम्भ के कार्यों मे जहाँ हमारे आदेश, निर्देश आदि के बिना काम चलता हो, हमारी सलाह की जरूरत न हो, वहाँ से हम अपने मन को हटाते जाएँ। अपना भार, अपना फर्ज, दूसरो को सँभालते जाएँ। अरे! जिन्दगी-भर यह सब किया—अब क्या जीवन-भर ऐसा ही करते रहना है। अब है सँभालने वाले, छोडो झझट, निवृत्ति लो। कल्याण-साधना मे लगो। क्या अब भी बिना जरूरत, बिना माँगी सलाह देते रहोगे ?

गिड़गिड़ाओ मत

आत्मा में बल भरो। दीन मत बनो। इन कर्मों के सामने गिड़गिड़ाओ नहीं। आये हैं, तो चले भी जाएँगे; रहने वाले नहीं हैं।